संत कबीर के दोहे

सरल हिंदी अर्थ सहित

800 दोहे · 15 विषय

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥

किताबें पढ़ते-पढ़ते लोग जीवन बिता देते हैं, फिर भी ज्ञानी नहीं बनते।
प्रेम के ढाई अक्षर जो समझ ले, वही सच्चा पंडित है।

kabirkedohe.in

रोज़ एक नया दोहा · विषय के अनुसार संग्रह · मुफ़्त

सहयोग करें

यह संग्रह मुफ़्त है और मुफ़्त रहेगा। अगर उपयोगी लगा, तो UPI से छोटा सहयोग भेज सकते हैं — इससे होस्टिंग का ख़र्च चलता रहेगा।

`santkabirjikabhakt@axl`

प्रस्तुतकर्ता

Tushar Goyal
WillingWorks · willingworks.in

संपर्क

willingtushar@gmail.com

पता

Top Floor, House No. 319
Sector 10, Gurugram, Haryana 122001

विषय-सूची

गुरु महिमा 136

भक्ति और नाम-स्मरण 115

सत्संग और संगति 68

साधु के लक्षण 99

पाखंड और आडंबर 29

माया और मोह 20

काल और मृत्यु 121

अहंकार और गर्व 32

प्रेम और विरह 23

वाणी और व्यवहार 12

ज्ञान और विवेक 27

दया और परोपकार 13

मन और संयम 38

संतोष और त्याग 19

उपदेश और चेतावनी 50

गुरु महिमा

136 दोहे

4

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपनो, गोविन्द दियो बताय॥

गुरु और ईश्वर दोनों सामने खड़े हों तो पहले किसके चरण छुऊँ? कबीर कहते हैं—गुरु ही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग उन्हीं ने दिखाया है। गुरु की महिमा ईश्वर से भी बड़ी है।

5

बलिहारी गुरु आपनो, घड़ी-घड़ी सौ सौ बार।
मानुष से देवत किया, करत न लागी बार॥

अपने गुरु पर मैं हर घड़ी सैकड़ों बार न्योछावर हूँ। उन्होंने एक साधारण मनुष्य को देवता के समान बना दिया और इसमें उन्हें देर भी न लगी। गुरु का संस्कार व्यक्ति को पूरी तरह बदल देता है।

13

कबीरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर॥

कबीर कहते हैं—वे लोग अंधे हैं जो गुरु को साधारण मनुष्य समझते हैं। यदि ईश्वर रूठ जाएँ तो गुरु शरण दे सकते हैं, किंतु गुरु ही रूठ जाएँ तो कहीं ठिकाना नहीं बचता।

47

राम रहे बन भीतरे, गुरु की पूजा ना आस।
रहे कबीर पाखंड सब, झूठे सदा निराश॥

जो राम को केवल वन में खोजता है और गुरु की सेवा-पूजा की परवाह नहीं करता, कबीर कहते हैं—वह सब पाखंड है। ऐसे झूठे साधक सदा निराश ही रहते हैं।

49

तीरथ गये ते एक फल, संत मिले फल चार।
सद्गुरु मिले अनेक फल, कहें कबीर विचार॥

तीर्थ जाने से एक फल मिलता है, संत के मिलने से चार गुना। पर सद्गुरु मिल जाएँ तो अनगिनत फल मिलते हैं—कबीर विचार कर यही कहते हैं। गुरु-प्राप्ति सर्वोपरि है।

104

सब धरती कागज करूँ, लेखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय॥

सारी धरती को कागज बना लूँ, समस्त वनों को कलम और सातों समुद्रों की स्याही बना लूँ—तब भी गुरु के गुण लिखे नहीं जा सकते। गुरु की महिमा अवर्णनीय है।

127

गर्भ योगेश्वर गुरु बिना, लागा हर का सेव।
कहे कबीर बैकुंठ से, फेर दिया शुकदेव॥

गुरु के बिना केवल भगवान की सेवा में लगे रहने से काम नहीं चलता। कबीर कहते हैं—गर्भ से ही योगी शुकदेव तक को बैकुंठ के द्वार से लौटा दिया गया, क्योंकि उन्होंने गुरु नहीं किया था।

129

काँचे भाँडे से रहे, ज्यों कुम्हार का देह।
भीतर से रक्षा करे, बाहर चोई देह॥

जैसे कुम्हार कच्चे घड़े को सँभालता है—भीतर हाथ का सहारा देता है और बाहर से थपकी मारता है—वैसे ही गुरु शिष्य को भीतर से सँभालते और बाहर से ताड़ते हैं।

154

कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर के पीर॥

सच्चा संत वही है जो दूसरे की पीड़ा को समझे। जो पराई पीड़ा नहीं जानता, वह गुरु कहलाने योग्य नहीं। संवेदना ही संतत्व की कसौटी है।

196

ना गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।
दुन्यूँ बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव॥

न सच्चा गुरु मिला और न कोई सच्चा शिष्य बना—दोनों ने लालच का दाँव खेला। परिणाम यह कि दोनों पत्थर की नाव पर चढ़कर धार में डूब गए।

197

सतगुर हम सूं रीझि करि, एक कह्या करि संग।
बरस्या बादल प्रेम का, भींजि गया अब अंग॥

सतगुरु ने प्रसन्न होकर मुझे एक बात कह दी और साथ ले लिया। प्रेम का बादल ऐसा बरसा कि रोम-रोम भीग गया।

198

कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीष।
स्वाँग जती का पहिरि करि, धरि-धरि माँगे भीष॥

जिसे सतगुरु नहीं मिला, उसकी शिक्षा अधूरी रह गई। वह संन्यासी का स्वाँग रचकर घर-घर भीख माँगता फिरता है। बिना गुरु के साधना केवल वेश बनकर रह जाती है।

199

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान॥

यह शरीर विष की बेल है और गुरु अमृत की खान। यदि सिर देने से भी गुरु मिल जाएँ तो सौदा सस्ता ही समझो।

231

कलि का स्वामी लोभिया, पीतलि घरी खटाइ।
राज-दुबारा यों फिरै, ज्यूँ हरिहाई गाइ॥

कलियुग का गुरु लोभी हो गया है, पीतल को खटाई से चमकाकर सोना बताता है। वह राजदरबार के चक्कर ऐसे काटता है जैसे खेत उजाड़ने वाली गाय।

233

इहि उदर के कारणे, जग पाच्यो निस जाम।
स्वामी-पणौ जो सिरि चढ़यो, सिर यो न एको काम॥

इस पेट के कारण सारा जगत रात-दिन खपता रहता है। और जिसके सिर पर गुरु होने का अहंकार चढ़ गया, उससे एक भी सच्चा काम नहीं बना।

236

कलि का स्वमी लोभिया, मनसा घरी बधाई।
दैंहि पईसा ब्याज़ को, लेखां करता जाई॥

कलियुग का गुरु लोभी है, उसकी कामनाएँ घर भर गई हैं। वह ब्याज पर पैसा देता है और हिसाब लगाता रहता है—गुरु कम, महाजन अधिक।

247

कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड़।
सतगुरु की कृपा भई, नहीं तौ करती भाँड़॥

माया मोहिनी है, मीठी शक्कर जैसी लुभावनी। सतगुरु की कृपा हो गई इसलिए बच गया, नहीं तो वह मुझे भी विदूषक बना देती।

352

गुरु सों ज्ञान जु लीजिये, सीस दीजिए दान।
बहुतक भोंदूँ बहि गये, राखि जीव अभिमान॥

गुरु से ज्ञान लेना हो तो सिर दान में दे दो। बहुत-से मूर्ख जीव अपना अभिमान बचाए रखने के कारण बह गए।

353

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि-कोटि परनाम।
कीट न जाने भृंग को, गुरु करले आप समान॥

गुरु को कोटि-कोटि प्रणाम और दंडवत करो। जैसे भृंगी कीड़े को अपने समान बना लेती है, वैसे ही गुरु शिष्य को अपने समान बना लेते हैं।

354

कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय।
जनम-जनम का मोरचा, पल में डारे धोय॥

शिष्य कुबुद्धि के कीचड़ से भरा है और गुरु का ज्ञान जल के समान। वह जल जन्म-जन्म का जमा हुआ मैल पल भर में धो देता है।

355

गुरु पारस को अंतरो, जानत है सब संत।
वह लोहा कंचन करे, ये करि लेय महंत॥

गुरु और पारस का अंतर सब संत जानते हैं। पारस लोहे को सोना भर बनाता है, पर गुरु शिष्य को अपने ही समान महान बना देते हैं।

356

गुरु की आज्ञा आवै, गुरु की आज्ञा जाय।
कहें कबीर सो संत हैं, आवागमन नशाय॥

जो गुरु की आज्ञा से आता है और आज्ञा से ही जाता है—कबीर कहते हैं वही सच्चा संत है, उसका आवागमन मिट जाता है।

357

जो गुरु बसै बनारसी, सीष समुंदर तीर।
एक पलक बिसरे नहीं, जो गुण होय शरीर॥

गुरु काशी में बसें और शिष्य समुद्र के किनारे—फिर भी यदि शिष्य में सच्चे गुण हों तो एक पल के लिए भी गुरु विस्मृत नहीं होते। दूरी बाधा नहीं है।

358

गुरु समान दाता नहीं, याचक सीष समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्ही दान॥

गुरु के समान कोई दाता नहीं और शिष्य के समान कोई याचक नहीं। गुरु ने तीनों लोकों की सम्पदा दान में दे दी।

359

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट॥

गुरु कुम्हार है और शिष्य घड़ा—वह गढ़-गढ़कर खोट निकालता है। भीतर से हाथ का सहारा देता है और बाहर से चोट मारता है। अनुशासन में भी करुणा छिपी होती है।

360

गुरु को सिर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहें कबीर ता दास को, तीन लोक भय नहिं॥

गुरु को सिर पर रखो और उनकी आज्ञा में चलो। कबीर कहते हैं—ऐसे सेवक को तीनों लोकों में कोई भय नहीं रहता।

361

लच्छ कोष जो गुरु बसै, दीजै सुरति पठाय।
शब्द तुरी बसवार है, छिन आवै छिन जाय॥

गुरु लाखों कोस दूर भी बसें तो अपनी सुरति उन तक भेज दो। शब्द ऐसा घोड़ा है जो पल में जाता है और पल में लौट आता है।

362

गुरु मूरति गति चंद्रमा, सेवक नैन चकोर।
आठ पहर निरखता रहे, गुरु मूरति की ओर॥

गुरु की मूर्ति चंद्रमा के समान है और सेवक के नेत्र चकोर के। वह आठों पहर गुरु की ओर ही टकटकी लगाए देखता रहता है।

363

गुरु सों प्रीति निबाहिये, जेहि तत निबटै संत।
प्रेम बिना ढिग दूर है, प्रेम निकट गुरु कंत॥

गुरु से प्रीति निभाओ, इसी से तत्त्व का निर्णय होता है। प्रेम के बिना पास रहकर भी गुरु दूर हैं और प्रेम हो तो दूर रहकर भी निकट।

364

गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिलै न मोष।
गुरु बिन लखै न सत्य को, गुरु बिन मिटे न दोष॥

गुरु के बिना न ज्ञान उपजता है, न मोक्ष मिलता है। गुरु के बिना न सत्य दिखाई देता है और न दोष मिटते हैं।

365

गुरु मूरति आगे खड़ी, दुनिया भेद कछु नाहिं।
उन्हीं कूँ परनाम करि, सकल तिमिर मिटि जाहिं॥

गुरु की मूर्ति सामने खड़ी हो तो दुनिया का कोई भेद शेष नहीं रहता। उन्हीं को प्रणाम करने से सारा अंधकार मिट जाता है।

366

गुरु शरणागति छाड़ि के, करै भरोसा और।
सुख सम्पति की कह चली, नहीं परक ये ठौर॥

जो गुरु की शरण छोड़कर किसी और पर भरोसा करता है, उसे सुख-सम्पत्ति तो दूर, कहीं ठिकाना भी नहीं मिलता।

367

सिष खाँडा गुरु भसकला, चढ़ै शब्द खरसान।
शब्द सहै सम्मुख रहै, निपजै शीष सुजान॥

शिष्य तलवार है और गुरु सान चढ़ाने वाला—शब्द की सान पर वह चढ़ता है। जो शब्द की चोट सहकर सामने डटा रहे, वही सुयोग्य शिष्य बनता है।

368

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास।
गुरु सेवा ते पाइये, सद्गुरु चरण निवास॥

ज्ञान, सत्संग, प्रेम, सुख, दया, भक्ति और विश्वास—ये सब गुरु की सेवा से मिलते हैं, और अंत में सद्गुरु के चरणों में निवास प्राप्त होता है।

369

अहं अग्नि निशि दिन जरै, गुरु सो चाहे मान।
ताको जम न्योता दिया, होउ हमार मेहमान॥

जो अहंकार की आग में रात-दिन जलता है और गुरु से भी सम्मान चाहता है—यमराज ने उसे न्योता दे रखा है कि आओ, हमारे मेहमान बनो।

370

जैसी प्रीति कुटुम्ब की, तैसी गुरु सों होय।
कहें कबीर ता दास का, पला न पकड़ै कोय॥

जैसी प्रीति परिवार से होती है, वैसी ही गुरु से हो जाए—कबीर कहते हैं तो उस सेवक का दामन काल भी नहीं पकड़ सकता।

371

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव॥

ध्यान का मूल गुरु का स्वरूप है, पूजा का मूल गुरु के चरण, नाम का मूल गुरु का वचन और सत्य का मूल सद्भाव है।

373

सोइ-सोइ नाच नचाइये, जेहि निबहे गुरु प्रेम।
कहै कबीर गुरु प्रेम बिन, कतहुँ कुशल नहि क्षेम॥

वही नाच नाचो जिससे गुरु का प्रेम निभे। कबीर कहते हैं—गुरु के प्रेम बिना कहीं कुशल-क्षेम नहीं है।

374

कहें कबीर जजि भरम को, नन्हा है कर पीव।
तजि अहं गुरु चरण गहु, जमसों बाचै जीव॥

भ्रम को छोड़ो और छोटा बनकर वह अमृत पियो। अहंकार त्यागकर गुरु के चरण पकड़ लो, तभी जीव यम से बच सकेगा।

375

कोटिन चंदा उगही, सूरज कोटि हज़ार।
तीमिर तौ नाशै नहीं, बिन गुरु घोर अंधार॥

करोड़ों चंद्रमा उग आएँ और हजारों करोड़ सूर्य—फिर भी वह अंधकार नहीं मिटता। गुरु के बिना घोर अँधेरा बना ही रहता है।

376

तबही गुरु प्रिय बनै कहि, शीष बढ़ी चित प्रीत।
ते रहियें गुरु सनमुखाँ, कबहूँ न दीजै पीठ॥

जब शिष्य के चित्त में प्रीति बढ़ती है तभी गुरु प्रिय लगते हैं। इसलिए सदा गुरु के सम्मुख रहो, कभी पीठ मत दिखाओ।

377

तन मन शीष निछावरै, दीजै सरबस प्रान।
कहें कबीर गुरु प्रेम बिन, कितहूँ कुशल नहिं क्षेम॥

तन, मन और सिर न्योछावर कर दो, प्राण तक सर्वस्व दे दो। कबीर कहते हैं—गुरु के प्रेम बिना कहीं कल्याण नहीं।

378

जो गुरु पूरा होय तो, शीषहि लेय निबाहि।
शीष भाव सुत्त जानिये, सुत ते ज्येष्ठ शिष आहि॥

यदि गुरु पूर्ण हों तो शिष्य को अंत तक निभा ले जाते हैं। शिष्य को पुत्र के भाव से देखा जाता है—बल्कि शिष्य पुत्र से भी बढ़कर होता है।

379

भौ सागर की त्रास ते, गुरु की पकड़ो बाँहि।
गुरु बिन कौन उबारसी, भौ जल धारा माहिं॥

भवसागर के भय से बचने के लिए गुरु की बाँह पकड़ लो। इस जल-धारा में गुरु के बिना और कौन उबारेगा?

380

करै दूरि अज्ञानता, अंजन ज्ञान सुदेय।
बलिहारी वे गुरुन की, हंस उबारि जु लेय॥

जो अज्ञान दूर करके ज्ञान का अंजन लगा दें, उन गुरुओं पर बलिहारी—वे हंस रूपी जीव को उबार लेते हैं।

381

सुनिये संतों साधु मिलि, कहहिं कबीर बुझाय।
जेहि विधि गुरु सों प्रीति छै, कीजै सोई उपाय॥

हे संतो, मिलकर सुनो—कबीर समझाकर कहते हैं कि जिस भी उपाय से गुरु से प्रीति बढ़े, वही उपाय करो।

382 अबुध सुबुध सुत मातु पितु, सबहि करै प्रतिपाल।
अपनी ओर निबाहिये, सिख सुत गहि निज चाल॥

माता-पिता मूर्ख और बुद्धिमान—सभी संतानों का पालन करते हैं। इसी तरह गुरु भी सबको निभाते हैं; शिष्य को चाहिए कि वह अपनी ओर से मर्यादा निभाए।

383 लौ लागी विष भागिया, कालख डारी धोय।
कहें कबीर गुरु साबुन सों, कोई इक ऊजल होय॥

लगन लगी तो विष भाग गया और कालिख धुल गई। कबीर कहते हैं—गुरु रूपी साबुन से कोई विरला ही उजला हो पाता है।

384 राजा की चोरी करे, रहै रंग की ओट।
कहें कबीर क्यों उबरै, काल कठिन की चोट॥

जो राजा के यहाँ चोरी करके रंगरेलियों की आड़ में छिपा रहता है—कबीर कहते हैं, वह काल की कठोर चोट से कैसे बचेगा?

385 साबुन बिचारा क्या करे, गाँठे राखे मोय।
जल सो अरसाँ नहिं, क्यों कर ऊजल होय॥

बेचारा साबुन क्या करे, यदि उसे गाँठ में ही बाँधकर रखा जाए और जल से उसका स्पर्श ही न हो? फिर कपड़ा उजला कैसे होगा—गुरु का उपदेश भी लागू करने से ही फलता है।

386 सद्गुरु तो सतभाव है, जो अस भेद बताय।
धन्य शीष धन भाग तिहि, जो ऐसी सुधि पाय॥

सद्गुरु स्वयं सद्भाव हैं जो ऐसा गूढ़ भेद बता देते हैं। धन्य है वह शिष्य और धन्य उसका भाग्य जिसे ऐसी सुध मिल जाए।

387 सतगुरु शरण न आवहीं, फिर फिर होय अकाज।
जीव खोय सब जायेंगे, काल तिहूँ पुर राज॥

जो सतगुरु की शरण में नहीं आते, उनका बार-बार काम बिगड़ता है। वे जीवन खोकर चले जाएँगे, क्योंकि तीनों लोकों में काल का ही राज है।

388 सतगुरु सम कोई नहीं, सात दीप नौ खंड।
तीन लोक न पाइये, अरु इक्कीस ब्रह्मंड॥

सात द्वीप, नौ खंड, तीनों लोक और इक्कीस ब्रह्मांडों में खोज लो—सतगुरु के समान कोई नहीं मिलेगा।

389 सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भाँड तोड़ि करि, रहै निराला होय॥

सतगुरु मिल गए, यह तभी जानो जब भीतर ज्ञान का उजाला हो जाए। तब भ्रम का घड़ा टूट जाता है और साधक निर्लिप्त हो जाता है।

390 सतगुरु मिले जु सब मिले, न तो मिला न कोय।
माता-पिता सुत बांधवा, ये तो घर घर होय॥

सतगुरु मिल गए तो सब मिल गया, नहीं तो कुछ नहीं मिला। माता-पिता, पुत्र और भाई-बंधु तो घर-घर में होते हैं।

391 जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहै कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव॥

जिसे खोजते-खोजते ब्रह्मा, देवता, मनुष्य और मुनि तक थक गए—कबीर कहते हैं, हे साधु! उसे पाने के लिए सतगुरु की सेवा करो।

392 मनहि दिया निज सब दिया, मन से संग शरीर।
अब देवे को क्या रहा, यों कहि कहहिं कबीर॥

मन दे दिया तो सब दे दिया, क्योंकि मन के साथ शरीर भी चला जाता है। अब देने को शेष क्या रहा—कबीर यही कहते हैं।

393 सतगुरु को माने नहीं, अपनी कहै बनाय।
कहै कबीर क्या कीजिये, और मता मन जाय॥

जो सतगुरु को नहीं मानता और अपनी ही गढ़ी बात कहता है—कबीर कहते हैं उसका क्या किया जाए, उसका मन तो दूसरे मतों में भटकता रहता है।

394 जग में युक्ति अनूप है, साधु संग गुरु ज्ञान।
तामें निपट अनूप है, सतगुरु लागा कान॥

संसार में साधु-संग और गुरु-ज्ञान से बढ़कर कोई उपाय नहीं। और उसमें भी सबसे अनुपम है सतगुरु का उपदेश कान में पड़ जाना।

395 कबीर समूझा कहत है, पानी थाह बताय।
ताकूँ सतगुरु का करे, जो औघट डूबे जाय॥

कबीर समझाकर कहते हैं और पानी की थाह तक बता देते हैं। फिर भी जो गहरे में जाकर डूब जाए, उसका सतगुरु भी क्या करें?

396 बिन सतगुरु उपदेश, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा-विष्णु महेश, और सकल जिव को गिनै॥

सतगुरु के उपदेश बिना देवता, मनुष्य और मुनि तक पार नहीं उतरते। जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश का यह हाल है तो साधारण जीवों की क्या गिनती।

397 केते पढ़ि गुनि पचि भए, योग यज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करे उपाय॥

कितने ही लोग पढ़-गुनकर और योग, यज्ञ, तप करके खप गए। सतगुरु के बिना करोड़ों उपाय करने पर भी कुछ नहीं मिलता।

398

डूबा औघट न तरै, मोहि अंदेशा होय।
लोभ नदी की धार में, कहा पड़ो नर सोइ॥

गहरे में डूबा हुआ तैर नहीं पाता—मुझे यही चिंता है। लोभ रूपी नदी की धार में मनुष्य जाने कहाँ जा पड़ा है।

399

सतगुरु खोजो संत, जो व काज को चाहहु।
मेटो भव को अंक, आवा गवन निवारहु॥

हे संतो, यदि अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हो तो सतगुरु को खोजो। भव का अंक मिटाओ और आवागमन से छुटकारा पाओ।

400

करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेश है।
होये सब जिव काज, निश्चय करि परतीत करू॥

कुल की झूठी लाज छोड़कर सतगुरु के उपदेश पर चलो। निश्चय और विश्वास कर लो तो जीव के सारे कार्य सिद्ध हो जाएँगे।

401

यह सतगुरु उपदेश है, जो मन माने परतीत।
करम भरम सब त्यागि के, चलै सो भव जल जीत॥

सतगुरु का उपदेश यही है कि मन में पूर्ण विश्वास हो। जो कर्मकांड और भ्रम सब त्यागकर चले, वही भवसागर जीत लेता है।

402

जग सब सागर मोहि, कहु कैसे बूड़त तेरे।
गहु सतगुरु की बाँहि, जो जल थल रक्षा करै॥

सारा जगत मोह का सागर है, इसमें डूबने से कैसे बचोगे? सतगुरु की बाँह पकड़ लो, वे जल और थल दोनों में रक्षा करते हैं।

403

जानीता बूझा नहीं, बूझि किया नहीं गौन।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावे कौन॥

जाना पर समझा नहीं, और समझा भी तो उस पर चला नहीं। अंधे को अंधा मिल गया—अब राह कौन बताए?

404

जाका गुरु है आँधरा, चेला खरा निरंध।
अंधे को अंधा मिला, पड़ा काल के फंद॥

जिसका गुरु ही अंधा हो और चेला उससे भी अधिक अंधा—ऐसे में दोनों काल के फंदे में जा पड़ते हैं।

405

गुरु लोभ शिष लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाँव॥

गुरु लोभी और शिष्य लालची—दोनों ने अपना-अपना दाँव खेला। परिणाम यह कि दोनों बेचारे पत्थर की नाव पर चढ़कर डूब गए।

406

आगे अंधा कूप में, दूजे लिया बुलाय।
दोनों बूड़े बापुरे, निकसे कौन उपाय॥

एक अंधा पहले ही कुएँ में गिरा था, उसने दूसरे को भी बुला लिया। दोनों बेचारे डूब गए—अब निकलने का उपाय कौन बताए?

407

गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर के जाल में, फिर फिर गोता खाहिं॥

जिसने केवल देहधारी को गुरु बना लिया और सच्चे सतगुरु को नहीं पहचाना, वह भवसागर के जाल में बार-बार गोते खाता रहता है।

408

पूरा सतगुरु न मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग यती का पहिनि के, घर घर माँगी भीख॥

पूर्ण सतगुरु नहीं मिले और अधूरी शिक्षा सुन ली। फिर संन्यासी का स्वाँग रचकर घर-घर भीख माँगता फिरा।

409

कबीर गुरु है घाट का, हाँटू बैठा चेल।
मूड़ मुड़ाया साँझ कूँ, गुरु सबेरे ठेल॥

आजकल गुरु घाट पर बैठा है और चेला हाट में। साँझ को सिर मुँड़ाया और सबेरे गुरु को ठेल दिया—ऐसे संबंध में निष्ठा कहाँ?

410

गुरु-गुरु में भेद है, गुरु-गुरु में भाव।
सोइ गुरु नित बंदिये, शब्द बतावे दाव॥

गुरु और गुरु में भेद होता है, उनके भावों में भी अंतर होता है। नित्य उसी गुरु को वंदन करो जो शब्द का सही मर्म बता दे।

411

जो गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रांति न जिसका जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय॥

जिस गुरु से भ्रम न मिटे और भ्रांति दूर न हो, उसे झूठा समझो और उसे छोड़ने में देर मत करो।

412

झूठे गुरु के पक्ष की, तजत न कीजै वार।
द्वार न पावै शब्द का, भटके बारंबार॥

झूठे गुरु का पक्ष छोड़ने में देर मत करो। उससे शब्द का द्वार नहीं मिलता और साधक बार-बार भटकता रहता है।

413

सद्गुरु ऐसा कीजिये, लोभ मोह भ्रम नाहिं।
दरिया सो न्यारा रहे, दीसे दरिया माहिं॥

सद्गुरु ऐसा चुनो जिसमें लोभ, मोह और भ्रम न हो। वह संसार रूपी दरिया में दिखते हुए भी उससे अलग रहता है।

414

कबीर बेड़ा सार का, ऊपर लादा सार।
पापी का पापी गुरु, यों बूड़ा संसार॥

नाव लोहे की है और उस पर भी लोहा लाद दिया गया। पापी का गुरु भी पापी हो—इसी तरह सारा संसार डूब गया।

415

जो गुरु को तो गम नहीं, पाहन दिया बताय।
शिष शोधे बिन सेइया, पार न पहुँचा जाए॥

जिस गुरु को स्वयं मार्ग का पता नहीं, उसने पत्थर पूजने को बता दिया। और शिष्य ने बिना परखे उसकी सेवा कर ली—ऐसे में पार पहुँचना संभव नहीं।

416

सोचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय।
चंचल से निश्चल भया, नहिं आवै नहीं जाय॥

गुरु के पक्ष में विचार करके मन को स्थिर कर लो। तब चंचल मन निश्चल हो जाता है और आना-जाना समाप्त हो जाता है।

417

गु अँधियारी जानिये, रु कहिये परकाश।
मिटि अज्ञाने ज्ञान दे, गुरु नाम है तास॥

'गु' का अर्थ अंधकार है और 'रु' का प्रकाश। जो अज्ञान मिटाकर ज्ञान दे, उसी का नाम गुरु है।

418

गुरु नाम है गम्य का, शीष सीख ले सोय।
बिनु पद बिनु मरजाद नर, गुरु शीष नहिं कोय॥

गुरु उस लक्ष्य का नाम है जहाँ पहुँचना है, और शिष्य वह जो सीख ले। जिसमें न पद की समझ है न मर्यादा, वह न गुरु है न शिष्य।

419

गुरुवा तो घर फिरे, दीक्षा हमारी लेह।
कै बूड़ौ कै ऊबरो, टका परदानी देह॥

आजकल गुरु घर-घर घूमकर कहता है—हमारी दीक्षा ले लो। चाहे डूबो या उबरो, बस दक्षिणा का टका दे दो। यह गुरुता का पतन है।

420

गुरुवा तो सस्ता भया, कौड़ी अर्थ पचास।
अपने तन की सुधि नहीं, शिष्य करन की आस॥

गुरु इतना सस्ता हो गया कि आधी कौड़ी में पचास मिल जाएँ। अपनी सुध तो है नहीं, पर शिष्य बनाने की आशा लगी है।

421

जाका गुरु है गीरही, गिरही चेला होय।
कीच-कीच के धोवते, दाग न छूटे कोय॥

जिसका गुरु स्वयं गृहस्थ-मोह में उलझा हो और चेला भी वैसा ही—कीचड़ से कीचड़ धोने पर कोई दाग नहीं छूटता।

422

गुरु मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हरष शोष व्यापे नहीं, तब गुरु आपे आप॥

गुरु मिले, यह तभी जानो जब मोह और शरीर का ताप मिट जाए। जब हर्ष-शोक व्यापें नहीं, तब समझो गुरु स्वयं भीतर प्रकट हो गए।

423

गुरु बिचारा क्या करै, शब्द न लागै अंग।
कहें कबीर मैली गजी, कैसे लागू रंग॥

बेचारे गुरु क्या करें, जब शिष्य पर शब्द का असर ही न हो? कबीर कहते हैं—मैले कपड़े पर रंग कैसे चढ़ेगा?

424

गुरु बिचारा क्या करे, हृदय भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ा, पथर न भीजी कोर॥

बेचारे गुरु क्या करें, जब हृदय ही पत्थर हो गया हो? नौ नेजा पानी चढ़ गया, फिर भी पत्थर का किनारा तक नहीं भीगा।

425

कहता हूँ कहि जात हूँ, देता हूँ हेला।
गुरु की करनी गुरु जाने, चेला की चेला॥

मैं कहता हूँ, कहता चला जाता हूँ और पुकारकर सचेत करता हूँ। आगे गुरु की करनी गुरु जाने और चेले की चेला—हर कोई अपने कर्म का उत्तरदायी है।

426

शिष्य पुजै आपना, गुरु पूजै सब साध।
कहें कबीर गुरु शीष को, मत है अगम अगाध॥

शिष्य केवल अपने गुरु को पूजता है, पर गुरु सभी साधुओं को पूजते हैं। कबीर कहते हैं—गुरु और शिष्य का यह मत अगम और अथाह है।

427

हिरदे ज्ञान न उपजै, मन परतीत न होय।
ताके सद्गुरु कहा करें, घनघसि कुल्हरन होय॥

जिसके हृदय में ज्ञान न उपजे और मन में विश्वास न हो, उसका सद्गुरु क्या करें? कितना ही घिसो, पत्थर कुल्हाड़ी नहीं बनता।

428

ऐसा कोई न मिला, जासू कहूँ निसंक।
जासो हिरदा की कहूँ, सो फिर मारे डंक॥

ऐसा कोई नहीं मिला जिससे निःसंकोच होकर कह सकूँ। जिससे भी हृदय की बात कही, उसी ने पलटकर डंक मारा।

429

शिष किरपिन गुरु स्वारथी, किले योग यह आय।
कीच-कीच के दाग को, कैसे सके छुड़ाय॥

शिष्य कंजूस और गुरु स्वार्थी—ऐसा संयोग बन गया है। कीचड़ से कीचड़ का दाग भला कैसे छूटेगा?

430

स्वामी सेवक होय के, मनही में मिलि जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रहिये मन के माय॥

स्वामी और सेवक मन ही मन एक हो जाएँ, यही सच्चा संबंध है। चतुराई से कोई प्रसन्न नहीं होता—मन के भीतर सरल बने रहो।

431

गुरु कीजिए जानि के, पानी पीजै छानि।
बिना विचारे गुरु करे, परे चौरासी खानि॥

गुरु जान-परखकर बनाओ, जैसे पानी छानकर पिया जाता है। बिना विचारे गुरु बनाने वाला चौरासी लाख योनियों में भटकता है।

432

सत को खोजत मैं फिरूँ, सतिया न मिलै न कोय।
जब सत को सतिया मिले, विष तजि अमृत होय॥

मैं सत्य को खोजता फिरता हूँ, पर सत्यनिष्ठ कोई नहीं मिलता। जब सत्य को सत्यवान मिल जाए, तब विष छूटकर अमृत बन जाता है।

433

देश-देशांतर मैं फिरूँ, मानुष बड़ा सुकाल।
जा देखै सुख उपजै, वाका पड़ा दुकाल॥

देश-विदेश घूम आया, मनुष्यों की तो बहुतायत है। पर जिसे देखकर मन में सुख उपजे, ऐसे व्यक्ति का अकाल पड़ा हुआ है।

436

जो कामिनि परदै रहे, सुनै न गुरुगुण बात।
सो तो होगी कूकरी, फिरै उघारे गात॥

जो पर्दे में तो रहे पर गुरु के गुणों की बात न सुने—वह आवरण किस काम का? भीतर का ढका होना बाहरी परदे से अधिक महत्त्व रखता है।

437

चौंसठ दीवा जोय के, चौदह चंदा माहिं।
तेहि घर किसका चाँदना, जिहि घर सतगुरु नाहिं॥

चौंसठ दीपक जला दो और चौदह चंद्रमा भी उगा दो—फिर भी उस घर में उजाला कैसा, जिस घर में सतगुरु नहीं?

442

कंचन मेरू अरपही, अरपें कनक भंडार।
कहें कबीर गुरु बेमुखी, कबहूँ न पावै पार॥

कोई सुमेरु जितना सोना चढ़ा दे और स्वर्ण के भंडार अर्पित कर दे—कबीर कहते हैं, गुरु से विमुख व्यक्ति फिर भी कभी पार नहीं पाता।

444

शुकदेव सरीखा फेरिया, तो को पावे पार।
बिनु गुरु निगुरा जो रहे, पड़े चौरासी धार॥

शुकदेव जैसे को भी लौटा दिया गया, तो और कौन पार पाएगा? जो बिना गुरु के निगुरा रह जाता है, वह चौरासी की धारा में पड़ जाता है।

447

साकट मन का जेवरा, भजै सो कराय।
दो अच्छर गुरु बहिरा, बाधा जमपुर जाय॥

नास्तिक मन की रस्सी से बँधा है और जोर-जोर से चिल्लाता है। गुरु के दो अक्षरों के प्रति वह बहरा है, इसलिए बँधकर यमपुर जाता है।

451

टेक न कीजै बावरे, टेक माहि है हानि।
टेक छाड़ि मानिक मिलै, सत गुरु वचन प्रमानि॥

हे बावले! हठ मत कर, हठ में ही हानि है। हठ छोड़ने पर माणिक मिल जाता है—सतगुरु का वचन इसका प्रमाण है।

453

निगुरा ब्राह्मण नहिं भला, गुरुमुख भला चमार।
देवतन से कुत्ता भला, नित उठि भूँके द्वार॥

बिना गुरु वाला ब्राह्मण अच्छा नहीं, गुरुमुख चमार अच्छा है। निष्क्रिय देवताओं से तो वह कुत्ता भला जो नित्य उठकर द्वार पर पहरा देता है।

516

और देव नहिं चित्त बसै, मन गुरु चरण बसाय।
स्वल्पाहार भोजन करूँ, तृष्णा दूर पराय॥

चित्त में और कोई देव न बसे, मन गुरु के चरणों में बसा रहे और अल्पाहार करे—इससे तृष्णा दूर भाग जाती है।

555

जौ मानुष गृह धर्मयुत, राखै शील विचार।
गुरुमुख बानी साधु संग, मन वच, सेवा सार॥

जो गृहस्थ धर्म में रहते हुए भी शील और विचार बनाए रखे, गुरु की वाणी सुने, साधु-संग करे और मन-वचन से सेवा करे—वही सार्थक जीवन है।

607

सतगुरु शब्द उलंघ के, जो सेवक कहूँ जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कहें कबीर समझाय॥

जो सेवक सतगुरु के वचन को लाँघकर कहीं जाता है—कबीर समझाते हैं कि वह जहाँ भी जाएगा, वहाँ काल ही मिलेगा।

608

तू तू करूँ तो निकट है, दुर-दुर करू हो जाय।
जों गुरु राखै त्यों रहै, जो देवै सो खाय॥

'तू-तू' कहकर पुकारो तो वह निकट है, दुत्कारो तो दूर हो जाता है। गुरु जैसे रखें वैसे रहो और जो दें वही खाओ।

609

सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
कहें कबीर सेवा बिना, सेवक कभी न होय॥

जो सेवा में लगा रहे, वही सेवक कहलाता है। कबीर कहते हैं—सेवा के बिना कोई सेवक नहीं होता।

610

अनराते सुख सोवना, राते नींद न आय।
यों जल छूटी माछरी, तलफत रैन बिहाय॥

जो प्रेम में रँगे नहीं वे सुख से सोते हैं, पर रँगे हुए को नींद नहीं आती। जल से बिछड़ी मछली की तरह उसकी रात तड़पते ही बीतती है।

611

यह मन ताको दीजिये, साँचा सेवक होय।
सिर ऊपर आरा सहै, तऊ न दूजा होय॥

यह मन उसी को दो जो सच्चा सेवक हो—जो सिर पर आरा चलने पर भी दूसरा रास्ता न पकड़े। निष्ठा की यही परख है।

612

गुरु आज्ञा मानै नहीं, चलै अटपटी चाल।
लोक वेद दोनों गये, आये सिर पर काल॥

जो गुरु की आज्ञा नहीं मानता और मनमानी चाल चलता है, उसका लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं और सिर पर काल आ खड़ा होता है।

613

आशा करै बैकुंठ की, दुरमति तीनों काल।
शुक्र कही बलि ना करीं, ता ते गयो पताल॥

बैकुंठ की आशा करता है पर तीनों काल कुबुद्धि में लगा रहता है। बलि ने शुक्राचार्य की बात नहीं मानी, इसीलिए पाताल चला गया।

614

द्वार धनी के पड़ि रहे, धका धनी का खाय।
कबहुक धनी निवाजि है, जो दर छाड़ि न जाय॥

स्वामी के द्वार पर पड़े रहो और उसी के धक्के सहते रहो। जो द्वार नहीं छोड़ता, स्वामी कभी न कभी उस पर कृपा कर ही देता है।

615

उलटे सुलटे बचन के, शीष न मानै दुख।
कहें कबीर संसार में, सो कहिये गुरुमुख॥

जो शिष्य उलटे-सीधे वचन सुनकर भी दुःख नहीं मानता—कबीर कहते हैं, संसार में उसी को गुरुमुख कहा जाता है।

616

कहें कबीर गुरु प्रेम बस, क्या नियरै क्या दूर।
जाका चित जासों बसै, सौ तेहि सदा हजूर॥

गुरु के प्रेम में बँधे हों तो पास या दूर होने का कोई अर्थ नहीं। जिसका चित्त जिसमें बसता है, वह सदा उसके सामने ही रहता है।

617

गुरु आज्ञा लै आवही, गुरु आज्ञा लै जाय।
कहें कबीर सो संत प्रिय, बहु विधि अमृत पाय॥

जो गुरु की आज्ञा लेकर आता है और आज्ञा लेकर ही जाता है—कबीर कहते हैं, वही संत प्रिय है और अनेक प्रकार से अमृत पाता है।

618

गुरुमुख गुरु चितवत रहे, जैसे मणिहि भुजंग।
कहें कबीर बिसरे नहीं, यह गुरु मुख के अंग॥

गुरुमुख शिष्य गुरु का ध्यान ऐसे रखता है जैसे साँप अपनी मणि का। कबीर कहते हैं—वह कभी नहीं भूलता, यही गुरुमुख का लक्षण है।

619

यह सब तच्छन चितधरे, अप लच्छन सब त्याग।
सावधान सम ध्यान है, गुरु चरनन में लाग॥

इन सब सद्गुणों को मन में धारण करे और सारे दुर्गुण त्याग दे। सावधानी और समता ही ध्यान है—मन गुरु के चरणों में लगा रहे।

622

कबीर गुरु कै भावते, दूरिह ते दीसंत।
तन छीना मन अनमना, जग से रूठि फिरंत॥

गुरु के प्रिय भक्त दूर से ही पहचान लिए जाते हैं—उनका शरीर दुबला होता है, मन अनमना और वे संसार से विरक्त फिरते हैं।

623

सुख दुख सिर ऊपर सहै, कबहु न छोड़े संग।
रंग न लागै का, व्यापै सतगुरु रंग॥

जो सुख-दुःख सिर पर सहकर भी साथ नहीं छोड़ता, उस पर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ता—उस पर केवल सतगुरु का रंग व्यापता है।

624

गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कभी तोहि दास।
रिद्धि-सिद्धि सेवा करै, मुक्ति न छोड़े पास॥

समर्थ गुरु सिर पर खड़े हों तो हे दास, तुझे किस बात की चिंता? ऋद्धि-सिद्धि स्वयं सेवा करती हैं और मुक्ति पास से हटती ही नहीं।

625

लगा रहै सत ज्ञान सो, सबही बंधन तोड़।
कहें कबीर वा दास सो, काल रहै हथजोड़॥

जो सत्य-ज्ञान में लगा रहे और सारे बंधन तोड़ दे—कबीर कहते हैं, उस भक्त के आगे काल भी हाथ जोड़े खड़ा रहता है।

626

काहू को न सतापिये, जो सिर हंता होय।
फिर फिर वाकूँ बंदिये, दास लच्छन है सोय॥

किसी को मत सताओ, चाहे वह तुम्हारा प्राण लेने वाला ही क्यों न हो। बार-बार उसे भी प्रणाम करो—यही सच्चे दास का लक्षण है।

627

दास कहावन कठिन है, मैं दासन का दास।
अब तो ऐसा होय रहूँ, पाँव तले की घास॥

दास कहलाना कठिन है; मैं तो दासों का भी दास हूँ। अब तो ऐसा हो जाऊँ जैसे पैरों तले की घास।

629

दासातन हिरदै नहीं, नाम धरावै दास।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास॥

हृदय में दासभाव नहीं और नाम दास रखवा लिया। पानी पिए बिना प्यास कैसे मिटेगी? नाम से नहीं, भाव से पहचान होती है।

683

कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अंत का मीत॥

बस खाना और सोना—और किसी बात की चिंता नहीं। सतगुरु के शब्द को भुला दिया, जो आदि से अंत तक का सच्चा मित्र था।

688

आछे दिन पाछे गये, गुरु सों किया न हेत।
अब पछितावा क्या करे, चिड़िया चुग गई खेत॥

अच्छे दिन बीत गए और गुरु से प्रेम न किया। अब पछताने से क्या लाभ, जब चिड़ियाँ खेत चुग गईं?

693

ऊँचा मंदिर मेड़िया, चला कली ढुलाय।
एकहि गुरु के नाम बिन, जदि तदि परलय जाय॥

ऊँचे भवन और अटारियाँ बनवाकर चल दिया। एक गुरु के नाम के बिना यह सब देर-सबेर नष्ट हो ही जाता है।

707

यह तन काँचा कुंभ है, चोट चहूँ दिस खाय।
एकहि गुरु के नाम बिन, जदि तदि परलय जाय॥

यह शरीर कच्चा घड़ा है जो चारों ओर से चोट खाता रहता है। एक गुरु के नाम के बिना यह देर-सबेर नष्ट हो ही जाता है।

723

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरे, गाफिल खाई मार॥

भय ही सच्ची करनी है, भय ही परम गुरु, भय ही पारस और भय ही सार है। जो सचेत भय में रहता है वह उबर जाता है और लापरवाह मार खाता है।

728

बैल गढ़ंता नर, चूका सींग रु पूँछ।
एकहि गुरु के ज्ञान बिनु, धिक दाढ़ी धिक मूँछ॥

गढ़ते-गढ़ते बैल बना डाला, पर सींग और पूँछ ही चूक गए। एक गुरु के ज्ञान के बिना ऐसी दाढ़ी और मूँछ को धिक्कार है।

776

घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पहिचान।
छाप बिना गुरु नाम के, साकट रहा निदान॥

घाट पर धर्मराज चुंगी लेने बैठे हैं, वे गुरुमुख को पहचान लेते हैं। गुरु के नाम की छाप के बिना नास्तिक वहीं रोक लिया जाता है।

797

कहते तो कहि जान दे, गुरु की सीख तु लेय।
साकट जन औ श्वान को, फेरि जवाब न देय॥

कहने वालों को कहने दो और तुम गुरु की सीख ग्रहण करो। नास्तिक और कुत्ते को पलटकर उत्तर मत दो।

799

या दुनिया दो रोज की, मत कर या सो हेत।
गुरु चरनन चित लाइये, जो पूरन सुख हेत॥

यह दुनिया दो दिन की है, इससे प्रेम मत करो। चित्त गुरु के चरणों में लगाओ, वही पूर्ण सुख का कारण है।

भक्ति और नाम-स्मरण

115 दोहे

1

दुख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय॥

दुःख पड़ने पर हर कोई ईश्वर को याद करता है, पर सुख के दिनों में कोई नहीं। कबीर कहते हैं—यदि मनुष्य सुख के समय भी प्रभु का स्मरण करता रहे, तो उसके जीवन में दुःख आने का अवसर ही न आए।

7

सुख में सुमिरन ना किया, दुःख में किया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद॥

जिसने सुख के दिनों में कभी ईश्वर को याद न किया और केवल दुःख आने पर पुकारा, कबीर कहते हैं—उस स्वार्थी भक्त की पुकार भला कौन सुनेगा? भक्ति निरंतर होनी चाहिए, आवश्यकता पड़ने पर नहीं।

9

लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।
पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट॥

राम-नाम का यह अनमोल खजाना खुला पड़ा है—जितना लूट सको लूट लो। जब प्राण देह छोड़ देंगे, तब पछताने से कुछ हाथ न आएगा। भजन का अवसर जीवित रहते ही है।

14

पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर गया सोय।
एक पहर हरि नाम बिन, मुक्ति कैसे होय॥

दिन के पाँच पहर कामकाज में और तीन पहर नींद में बीत गए। जब एक पहर भी हरि-नाम के लिए नहीं निकाला, तो मुक्ति कैसे मिलेगी? समय का यह विभाजन ही जीवन की दिशा तय करता है।

15

कबीरा सोया क्या करे, उठि न भजे भगवान।
जम जब घर ले जायेंगे, पड़ी रहेगी म्यान॥

कबीर कहते हैं—सोते रहने से क्या लाभ? उठकर भगवान का भजन कर। जब यमराज आत्मा को ले जाएँगे, तब यह शरीर रूपी म्यान यहीं पड़ी रह जाएगी। देह नश्वर है, नाम ही साथ जाता है।

20

नींद निशानी मौत की, उठ कबीरा जाग।
और रसायन छाड़ि के, नाम रसायन लाग॥

अधिक नींद मृत्यु का ही चिह्न है—हे कबीर, उठ और जाग जा। बाकी सब औषधियाँ और उपाय छोड़कर नाम रूपी रसायन का सेवन कर, यही जीवन की सच्ची दवा है।

29

क्या भरोसा देह का, बिनस जात छिन माँहि।
साँस-साँस सुमिरन करो, और यतन कुछ नाहिं॥

इस शरीर का क्या भरोसा—यह क्षण भर में नष्ट हो सकता है। इसलिए हर साँस के साथ प्रभु का स्मरण करो; इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

39

सोवा साधु जगाइए, करे नाम का जाप।
यह तीनों सोते भले, साकित सिंह और साँप॥

सोए हुए साधु को जगा देना चाहिए ताकि वह नाम-जप कर सके। पर नास्तिक, शेर और साँप—ये तीनों सोते ही भले हैं, क्योंकि जागने पर ये हानि ही पहुँचाते हैं।

50

सुमरण से मन लाइए, जैसे पानी बिन मीन।
प्राण तजे बिन बिछड़े, संत कबीर कह दीन॥

प्रभु-स्मरण में मन ऐसे लगाओ जैसे मछली का पानी से लगाव होता है—वह जल से बिछड़ते ही प्राण त्याग देती है। संत कबीर विनम्रता से यही सीख देते हैं।

56

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन कुल खोय॥

कामी, क्रोधी और लालची व्यक्ति से भक्ति नहीं हो सकती। भक्ति तो कोई वीर ही कर पाता है, जो जाति, वर्ण और कुल के अभिमान को त्याग दे।

60

भक्ति गेंद चौगान की, भावे कोई ले जाय।
कह कबीर कुछ भेद नाहिं, कहाँ रंक कहाँ राय॥

भक्ति खेल के मैदान की गेंद जैसी है—जिसे भावे वही ले जाए। कबीर कहते हैं इसमें कोई भेदभाव नहीं; न गरीब देखा जाता है, न राजा। भक्ति सबके लिए समान रूप से खुली है।

61

घट का परदा खोलकर, सन्मुख दे दीदार।
बाल सनेही साइयाँ, आवा अंत का यार॥

हृदय का परदा हटाकर सामने दर्शन दे दो। हे बचपन के स्नेही स्वामी, तुम्हीं अंत तक साथ निभाने वाले सच्चे मित्र हो। भक्त की यह आर्त पुकार है।

62

अंतर्यामी एक तुम, आत्मा के आधार।
जो तुम छोड़ो हाथ तो, कौन उतारे पार॥

हे प्रभु! तुम्हीं एकमात्र अंतर्यामी हो और आत्मा के आधार हो। यदि तुमने हाथ छोड़ दिया तो इस भवसागर से मुझे पार कौन उतारेगा? पूर्ण समर्पण का भाव।

66

सुमिरन में मन लाइए, जैसे नाद कुरंग।
कहें कबीर बिसरे नहीं, प्रान तजे तेहि संग॥

स्मरण में मन ऐसे लगाओ जैसे हिरन नाद (संगीत) में लीन हो जाता है। कबीर कहते हैं—वह उसे भूलता नहीं, प्राण तक उसी में त्याग देता है। तन्मयता ही सच्ची भक्ति है।

67

सुमिरत सुरत जगाय कर, मुख के कछु न बोल।
बाहर का पट बंद कर, अंदर का पट खोल॥

स्मरण करते हुए भीतर की सुरति जगाओ, मुख से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। बाहरी इंद्रियों के द्वार बंद करो और भीतर का द्वार खोलो। भक्ति अंतर्मुखी होकर ही फलती है।

71

जबही नाम हिरदे धरा, भया पाप का नाश।
मानो चिंगरी आग की, परी पुरानी घास॥

जैसे ही नाम हृदय में धारण किया, पापों का नाश हो गया—मानो आग की एक चिंगारी सूखी पुरानी घास पर गिर पड़ी हो। नाम का प्रभाव तत्काल और पूर्ण है।

74

जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजे, भगत कहावें सोय॥

जब तक संसार से आसक्ति का नाता बना है, तब तक सच्ची भक्ति नहीं होती। जो मोह का नाता तोड़कर हरि का भजन करे, वही सच्चा भक्त कहलाता है।

75

जल ज्यों प्यारा माहरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भगति प्यारा नाम॥

जैसे मछली को जल प्यारा है, लोभी को धन, और माता को अपना बच्चा—वैसे ही भक्त को प्रभु का नाम प्यारा होता है। यह सहज और अटूट लगाव है।

78

जब लगि भगति सकाम है, तब लग निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले, निष्कामी तज देव॥

जब तक भक्ति में कामना है, तब तक सारी सेवा निष्फल है। कबीर कहते हैं—जो देव स्वयं निष्काम हैं, वे सकाम भक्त को कैसे मिलेंगे? भक्ति निःस्वार्थ होनी चाहिए।

84

जहाँ काम तहाँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं वहाँ काम।
दोनों कबहूँ नहिं मिले, रवि रजनी इक धाम॥

जहाँ वासना है वहाँ नाम नहीं टिकता, और जहाँ नाम है वहाँ वासना नहीं रहती। ये दोनों कभी एक साथ नहीं मिलते, जैसे सूर्य और रात्रि एक स्थान पर नहीं रह सकते।

90

जब ही नाम हृदय धरयो, भयो पाप का नाश।
मानो चिनगी अग्नि की, परि पुरानी घास॥

जिस क्षण नाम हृदय में धारण किया, उसी क्षण पाप नष्ट हो गए—जैसे आग की चिंगारी पुरानी सूखी घास पर गिरते ही सब भस्म कर देती है।

93

बाहर क्या दिखलाए, अंतर जपिए राम।
कहा काज संसार से, तुझे धनी से काम॥

बाहरी दिखावा किसलिए? भीतर ही भीतर राम का जप करो। संसार को दिखाने से क्या प्रयोजन, तुम्हारा काम तो उस स्वामी से है।

96

कथा-कीर्तन कुल विशे, भवसागर की नाव।
कहत कबीरा या जगत में, नाहिं और उपाव॥

कथा और कीर्तन ही इस भवसागर को पार कराने वाली नाव हैं। कबीर कहते हैं—इस संसार में इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

110

सुमरण की सुध यों करो, ज्यों गागर पनिहार।
होले-होले सुरत में, कहें कबीर विचार॥

स्मरण की सुध ऐसे रखो जैसे पनिहारिन बातें करती हुई भी सिर पर रखी गागर की सुध नहीं छोड़ती। कबीर कहते हैं—काम करते हुए भी भीतर सुरत लगी रहनी चाहिए।

122

अपने-अपने साख की, सबही लीनी मान।
हरि की बातें दुरंतरा, पूरी ना कहूँ जान॥

सबने अपनी-अपनी समझ और गवाही को ही सही मान लिया है। किंतु हरि की बातें बहुत गहरी हैं, उन्हें पूरी तरह कोई नहीं जान पाया। मत-मतांतर अधूरे अनुभव से जन्मते हैं।

137

उज्ज्वल पहरे कापड़ा, पान-सुपारी खाय।
एक हरि के नाम बिन, बाँधा यमपुर जाय॥

उजले वस्त्र पहनना और पान-सुपारी खाना—यह सब ठाठ किस काम का? एक हरि-नाम के बिना मनुष्य बँधकर यमपुरी ही जाता है। बाहरी सज-धज मुक्ति नहीं देती।

152

कबीरा सोता क्या करे, जागो जपो मुरार।
एक दिना है सोवना, लांबे पाँव पसार॥

सोते रहने से क्या लाभ? जागो और भगवान का जप करो। एक दिन तो लंबे पाँव पसारकर सदा के लिए सोना ही है। तब तक का समय भजन के लिए है।

162

जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारी।
राम नाम रसना बसे, लीजै जनम सुधारि॥

जिस क्षण साधु के दर्शन हों, वह क्षण धन्य है। उस संग से जीभ पर राम-नाम बस जाता है और जन्म सुधर जाता है।

167

ते दिन गये अकारथी, संगत भई न संत।
प्रेम बिना पशु जीवना, भक्ति बिना भगवंत॥

वे दिन व्यर्थ ही बीत गए जिनमें संतों की संगति न मिली। प्रेम के बिना जीवन पशु के समान है और भक्ति के बिना भगवान नहीं मिलते।

168

तीर तुपक से जो लड़े, सो तो शूर न होय।
माया तजि भक्ति करे, सूर कहावै सोय॥

तीर और बंदूक से लड़ने वाला सच्चा शूरवीर नहीं। असली वीर वह है जो माया को त्यागकर भक्ति करे—भीतर के शत्रुओं को जीतना कठिन है।

181

मथुरा भावै द्वारिका, भावे जो जगन्नाथ।
साधु संग हरि भजन बिनु, कछु न आवे हाथ॥

चाहे मथुरा जाओ, चाहे द्वारिका, चाहे जगन्नाथ—साधु की संगति और हरि के भजन के बिना कुछ हाथ नहीं आता। तीर्थाटन भाव का विकल्प नहीं है।

185

राम नाम चीन्हा नहीं, कीना पिंजर बास।
नैन न आवे नींद रे, अलग न आवे भास॥

राम-नाम को पहचाना नहीं और इस देह रूपी पिंजरे में ही बसे रहे। ऐसे में न आँखों में चैन की नींद आती है, न भीतर कोई प्रकाश उतरता है।

195

राम-नाम कै पटंतरै, देबे कों कुछ नाहिं।
क्या ले गुर संतोषिए, हों स रही मन माँहि॥

राम-नाम के बदले देने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं। गुरु को क्या देकर संतुष्ट करूँ—यह कसक मन में ही रह जाती है। गुरु का ऋण चुकाया नहीं जा सकता।

201

राम पियारा छाँड़ि करि, करै आन का जाप।
बेस्या केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूँ बाप॥

प्यारे राम को छोड़कर जो किसी और का जाप करता है, उसकी दशा उस बालक जैसी है जो नहीं जानता कि किसे पिता कहे। अनेक जगह भटकने से निष्ठा नहीं बनती।

204

लंबा मारग, दूरि घर, विकट पंथ, बहुमार।
कहौ संतों, क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार॥

मार्ग लंबा है, घर दूर है, रास्ता कठिन है और बीच में अनेक बाधाएँ हैं। हे संतो, बताओ—ऐसे में हरि के दुर्लभ दर्शन कैसे प्राप्त हों? यह साधक की व्याकुल जिज्ञासा है।

206

यह तन जालों मसि करों, लिखों राम का नाउं।
लेखनि करूँ करंक की, लिखी-लिखी राम पठाउं॥

इस देह को जलाकर स्याही बना लूँ और उससे राम का नाम लिखूँ। हड्डियों की कलम बनाकर लिख-लिखकर राम को संदेश भेजूँ। यह विरह की चरम तीव्रता है।

207

अंदेसड़ा न भाजिसी, सदै सो कहियां।
के हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पास गयां॥

मन की यह चिंता कहने भर से नहीं मिटेगी। यह तभी दूर होगी जब या तो हरि स्वयं आ जाएँ, या मैं ही हरि के पास पहुँच जाऊँ। मिलन के बिना बेचैनी नहीं जाती।

208

इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचो तेल ज्यूँ, कब मुख देख पठिउं॥

इस शरीर का दीपक बनाऊँ, जीव को बाती बनाऊँ और रक्त को तेल की तरह सींचूँ—तब कहीं जाकर प्रियतम का मुख देख पाऊँ। भक्ति में सर्वस्व होम करने का भाव।

209

अंषड़ियाँ झाईं पड़ी, पंथ निहारि-निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि-पुकारि॥

राह देखते-देखते आँखों में झाइयाँ पड़ गईं और राम-राम पुकारते-पुकारते जीभ पर छाले पड़ गए। प्रतीक्षा की यह पीड़ा भक्त के समर्पण की गहराई बताती है।

219

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पितयाइ।
हरि जैसा है तैसा रहो, तू हरिष-हरिष गुण गाइ॥

जो देखा है उसे कहूँ कैसे, और कहूँ तो कोई विश्वास नहीं करता। हरि जैसे हैं वैसे ही रहें—तू बस प्रसन्न होकर उनके गुण गाता रह।

220

भारी कहों तो बहु डरों, हलका कहूँ तौ झूठ।
मैं का जाणी राम कों, नैनूं कबहूँ न दीठ॥

उसे भारी कहूँ तो डर लगता है और हलका कहूँ तो झूठ होगा। मैं राम को क्या जानूँ, आँखों से कभी देखा ही नहीं। यह ईश्वर के अवर्णनीय होने की विनम्र स्वीकृति है।

222

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमैया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ॥

जहाँ सिंदूर की रेखा हो वहाँ काजल नहीं लगाया जा सकता। इन नेत्रों में तो राम ही रम रहे हैं, फिर दूसरा कोई कहाँ समाए? पूर्ण निष्ठा में द्वैत की जगह नहीं।

223

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउं॥

मैं राम का कुत्ता हूँ और मोतिया मेरा नाम है। गले में राम की रस्सी बँधी है—वे जिधर खींचते हैं, मैं उधर ही चला जाता हूँ। यह पूर्ण समर्पण का भाव है।

226

भगति बिगाड़ी कामिया, इंद्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि॥

कामी व्यक्ति ने इंद्रियों के स्वाद के लिए अपनी भक्ति बिगाड़ ली। हाथ आया हीरा खो दिया और सारा जन्म व्यर्थ गँवा दिया।

232

स्वामी हूवा सीतका, पैलाकार पचास।
राम-नाम काठें रह्या, करै सिषां की आंस॥

गुरु बनने की होड़ ऐसी लगी कि पचासों खड़े हो गए। राम-नाम तो एक ओर धरा रह गया और वे केवल शिष्यों से मिलने वाली भेंट की आशा लगाए बैठे हैं।

241

सबै रसाइण मैं किया, हरि सा और न कोई।
तिल इक घर मैं संचरे, तौ सब तन कंचन होई॥

मैंने सारी रसायन-विधियाँ आजमा लीं, हरि-नाम जैसी कोई नहीं। यह तिल भर भी भीतर उतर जाए तो सारा शरीर कंचन हो जाता है।

242

हरि-रस पीया जाणिये, जे कबहुँ न जाइ खुमार।
मैमंता घूमत रहै, नाहिं तन की सार॥

हरि-रस पीना तभी माना जाए जब उसका नशा कभी न उतरे। पीने वाला मतवाला होकर घूमता रहता है और उसे अपने शरीर तक की सुध नहीं रहती।

243

कबीर हरि-रस यों पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुम्भार का, बहुरि न चढ़ई चाकि॥

कबीर ने हरि-रस ऐसे पिया कि कुछ बाकी न रहा। जैसे कुम्हार का पका हुआ घड़ा फिर चाक पर नहीं चढ़ता, वैसे ही सिद्ध जीव फिर जन्म-चक्र में नहीं आता।

254

कबीर पढ़ियो दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ।
बावन आषिर सोधि करि, ररै ममैं चित्त लाइ॥

पढ़ने का अहंकार दूर करो और पोथियाँ बहा दो। बावन अक्षरों में से बस 'र' और 'म' को शुद्ध करके मन में बसा लो—राम-नाम ही पर्याप्त है।

255

मैं जान्यूँ पाढ़िबो भलो, पाढ़िबा थे भलो जोग।
राम-नाम सूं प्रीती करि, भल भल नींयो लोग॥

मैं समझता था पढ़ना अच्छा है, फिर लगा पढ़ने से योग अच्छा है। पर अंत में जाना कि राम-नाम से प्रीति करने वाले ही सबसे भले निकले।

260

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै में साँच है, ताके हिरदै हरि आप॥

सत्य के समान कोई तप नहीं और झूठ के समान कोई पाप नहीं। जिसके हृदय में सत्य बसता है, उसके हृदय में स्वयं हरि निवास करते हैं।

268

मेरे संगी दोइ जरग, एक वैष्णौ एक राम।
वो है दाता मुक्ति का, वो सुमिरावै नाम॥

मेरे दो ही साथी हैं—एक वैष्णव संत और एक राम। राम मुक्ति के दाता हैं और संत नाम का स्मरण कराते रहते हैं।

273

कबीरा बन-बन में फिरा, कारणि आपणै राम।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सवेरे काम॥

अपने राम के लिए वन-वन भटकता फिरा। अंत में राम जैसे संत जन मिल गए और उन्होंने सारे काम सहज ही बना दिए।

278

काजल केरी कोठड़ी, तैसी यहु संसार।
बलिहारी ता दास की, पैसि निकसण हार॥

यह संसार काजल की कोठरी जैसा है। उस भक्त पर बलिहारी जो इसमें प्रवेश करके भी बिना दाग लगाए निकल आए।

286

जिनके नौबति बाजती, भगलैं बंधते बारि।
एकै हरि के नाव बिन, गए जनम सब हारि॥

जिनके द्वार पर नौबत बजती थी और हाथी बँधते थे—एक हरि-नाम के बिना वे भी जन्म हारकर चले गए। वैभव मुक्ति नहीं देता।

289

नान्हा कातौ चित्त दे, महँगे मोल बिलाइ।
गाहक राजा राम है, और न नेडा आइ॥

मन लगाकर महीन सूत कातो, वह ऊँचे दाम बिकेगा। इसका ग्राहक स्वयं राजा राम है, और कोई पास भी नहीं फटकता। साधना निष्ठा से करो।

290

कबीर केवल राम की, तू जिनि छाँड़ै ओट।
घण-अहरनि बिचि लौह ज्यूँ, घणी सहै सिर चोट॥

केवल राम की ओट कभी मत छोड़ना। जैसे लोहा हथौड़े और निहाई के बीच रहकर चोटें सहता है और आकार पाता है, वैसे ही साधक को भी सहना पड़ता है।

294

माला पहरयां कुछ नहीं, भगति न आई हाथ।
माथौ मूँछ मुंडाइ करि, चल्या जगत् के साथ॥

माला पहनने से कुछ नहीं हुआ, भक्ति हाथ नहीं आई। सिर और मूँछ मुँड़ाकर बस भीड़ के साथ चल पड़ा—भेड़चाल से साधना नहीं होती।

297

चतुराई हरि ना मिलै, ए बातां की बात।
एक निस प्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ॥

चतुराई से हरि नहीं मिलते, यह तो केवल बातों की बात है। जो निष्कपट प्रेमी और निराधार है, उसके ग्राहक स्वयं गोपीनाथ हैं।

299

कबीर हरि का भावता, झीणां पंजर मांस।
रैणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मांस॥

हरि का सच्चा प्रेमी दुबला और क्षीण हो जाता है। रात को उसे नींद नहीं आती और शरीर पर मांस नहीं चढ़ता। विरह देह को गला देता है।

302

जिहिं हिरदै हरि आइया, सो क्यूँ छाना होइ।
जतन-जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ॥

जिसके हृदय में हरि आ बसे, वह छिपा कैसे रह सकता है? लाख यत्न करके दबाओ, फिर भी उसका उजाला बाहर फूट पड़ता है।

305

पावक रूपी राम है, घटि-घटि रह्या समाइ।
चित चकमक लागै नहीं, ता थै धूवाँ है-है जाइ॥

राम अग्नि के समान हर हृदय में समाए हैं। पर चित्त की चकमक रगड़ती नहीं, इसलिए ज्वाला नहीं उठती और सब धुआँ बनकर उड़ जाता है।

308

जिहिं धरि साध न पूजि, हरि की सेवा नाहिं।
ते घर भड़धट सारषे, भूत बसै तिन माहिं॥

जिस घर में साधु का सत्कार नहीं और हरि की सेवा नहीं, वह घर श्मशान जैसा है—उसमें भूत ही बसते हैं।

309

कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिहिं कुल दास न उपजै, सो कुल आक-पलास॥

वही कुल श्रेष्ठ है जिसमें कोई हरि का भक्त जन्म ले। जिस कुल में भक्त न उपजे, वह आक और पलाश जैसा निरर्थक है।

310

क्यूँ नृप-नारी नींदिये, क्यूँ पनिहारी कौ मान।
वा माँग सँवारे पील कौ, या नित उठि सुमिरै राम॥

रानी की निंदा और पनिहारिन का सम्मान क्यों? क्योंकि रानी केवल शृंगार में लगी रहती है, जबकि पनिहारिन नित्य उठकर राम का स्मरण करती है। मूल्य आचरण से तय होता है।

311

काबा फिर कासी भया, राम भया रे रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम॥

काबा ही काशी बन गया और राम ही रहीम हो गए। मोटा आटा छनकर मैदा हो गया—अब कबीर बैठकर आराम से भोजन कर रहा है। भेदभाव मिट जाने का उल्लास।

314

कबीर का तू चितवै, का तेरा च्यंत्या होइ।
अनच्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ॥

तू किस बात की चिंता करता है, तेरे चिंता करने से क्या होगा? हरि वह सब कर देते हैं जिसकी तुझे चिंता तक नहीं थी।

316

कबीर सब जग हंडिया, मादल कंधि चढ़ाइ।
हरि बिन अपना कोउ नहीं, देखे ठोकि बनाइ॥

कंधे पर ढोल रखकर सारा जगत घूम लिया। ठोक-बजाकर देख लिया—हरि के सिवा अपना कोई नहीं है।

321

जिस मरनै यै जग डरै, सो मेरे आनंद।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ, पूरन परमानंद॥

जिस मृत्यु से यह सारा जगत डरता है, वही मेरे लिए आनंद है। कब मरूँ और कब उस पूर्ण परमानंद के दर्शन करूँ—भक्त के लिए मृत्यु मिलन का द्वार है।

324

कबीर हरि सब कूँ भजै, हरि कूँ भजै न कोइ।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होइ॥

हरि तो सबका ध्यान रखते हैं, पर हरि को कोई नहीं भजता। जब तक शरीर के सुख की आशा बनी है, तब तक कोई सच्चा दास नहीं बन सकता।

325

सिर साटैं हरि सेवइये, छाँड़ि जीव की बाणि।
जे सिर दीया हरि मिलै, तब लगि हाणि न जाणि॥

जीवन के मोह की आदत छोड़कर सिर देकर हरि की सेवा करो। यदि सिर देने से हरि मिल जाएँ तो इसे घाटा मत समझो।

336

कबीर हरि के नाव सूँ, प्रीति रहै इकवार।
तौ मुख तैं मोती झड़ै, हीरे अंत न पार॥

यदि हरि के नाम से एक बार भी सच्ची प्रीति हो जाए तो मुख से मोती झड़ने लगते हैं और हीरों का कोई अंत नहीं रहता।

434

कबीर गुरु की भक्ति बिन, राजा ससभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय॥

गुरु की भक्ति के बिना राजा भी गधे जैसा है, जो कुम्हार की मिट्टी ढोता रहता है और कोई उसे घास तक नहीं डालता।

435

कबीर गुरु की भक्ति बिन, नारी कूकरी होय।
गली-गली भूँकत फिरै, टूक न डारै कोय॥

गुरु की भक्ति के बिना जीवन कुतिया जैसा है, जो गली-गली भौंकती फिरती है और कोई उसे टुकड़ा तक नहीं डालता।

454

हरिजन आवत देखिके, मोहड़ो सूखि गयो।
भाव भक्ति समझ्यो नहीं, मूरख चूकि गयो॥

हरिभक्त को आते देखकर जिसका मुँह सूख गया, उसने भाव और भक्ति को समझा ही नहीं—वह मूर्ख अवसर चूक गया।

455

खसम कहावै बैरनव, घर में साकट जोय।
एक धरा में दो मता, भक्ति कहाँ ते होय॥

स्वयं को वैष्णव कहलाता है पर घर में नास्तिक भाव भरा है। एक ही स्थान पर दो मत हों तो भक्ति कैसे होगी?

465

बार-बार नहिं करि सके, पाख-पाख करि लेय।
कहें कबीरन सो भक्त जन, जन्म सुफल करि लेय॥

बार-बार न कर सको तो पखवाड़े में एक बार कर लो। कबीर कहते हैं—ऐसा भक्त अपना जन्म सफल कर लेता है।

468

छठे मास नहिं करि सके, बरस दिना करि लेय।
कहें कबीर सो भक्तजन, जमहिं चुनौती देय॥

छह महीने में भी न कर सको तो वर्ष में एक बार कर लो। कबीर कहते हैं—ऐसा भक्त यमराज को भी चुनौती दे देता है।

542

कुलवंता कोटिक मिले, पंडित कोटि पचीस।
सुपच भक्त की पनहि में, तुलै न काहू शीश॥

करोड़ों कुलीन और पच्चीस करोड़ पंडित मिल जाएँ, तो भी उनका सिर एक नीच कुल के भक्त की जूती के बराबर भी नहीं तुलता।

557

गिरही सुवै साधु को, भाव भक्ति आनंद।
कहें कबीर बैरागी को, निरबानी निरदुंद॥

गृहस्थ के लिए साधु की सेवा, भाव, भक्ति और आनंद का मार्ग है। कबीर कहते हैं—वैरागी के लिए निर्वाण और निर्द्वंद्व अवस्था।

566

घर में रहै तो भक्ति करूँ, ना तरू करू बैराग।
बैरागी बंध करै, ताका बड़ा अभाग॥

घर में रहो तो भक्ति करो, नहीं तो वैराग्य ले लो। पर जो वैरागी होकर भी बंधन बना ले, उससे बड़ा अभागा कोई नहीं।

628

दासातन हिरदै बसै, साधु न सो अधीन।
कहें कबीर सो दास है, प्रेम भक्ति लवलीन॥

जिसके हृदय में दासभाव बसा हो और जो साधुओं के अधीन रहे—कबीर कहते हैं, वही सच्चा दास है, प्रेम-भक्ति में लीन।

630

भक्ति कठिन अति दुर्लभ, भेष सुगम नित सोय।
भक्ति जु न्यारी भेष से, यह जनै सब कोय॥

भक्ति अत्यंत कठिन और दुर्लभ है, जबकि वेश धारण करना सहज है। भक्ति वेश से सर्वथा भिन्न है—यह सब जान लें।

631

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच-नीच धर अवतरै, होय संत का अंत॥

भक्ति का बीज कभी नष्ट नहीं होता, चाहे अनंत युग बीत जाएँ। वह ऊँचे या नीचे कुल में जन्म लेकर भी अंततः संत बना ही देता है।

632

भक्ति भाव भादों नदी, सबै चली घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जेठ मास ठहराय॥

भादों की नदी की तरह भक्ति-भाव सबमें उमड़ता है। पर सराहने योग्य वही नदी है जो जेठ की तपती गर्मी में भी बहती रहे।

633

भक्ति जु सीढ़ी मुक्ति की, चढ़े भक्त हरषाय।
और न कोई चढ़ि सकै, निज मन समझो आय॥

भक्ति मुक्ति की सीढ़ी है, जिस पर भक्त प्रसन्न होकर चढ़ता है। और कोई इस पर नहीं चढ़ सकता—अपने मन में यह समझ लो।

634

भक्ति दुहेली गुरुन की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारे हाथ सों, ताहि मिलै निज धाम॥

गुरु की भक्ति कठिन है, यह कायर का काम नहीं। जो अपने हाथों सिर उतार दे, उसी को निज धाम मिलता है।

635

भक्ति पदारथ तब मिलै, जब गुरु होय सहाय।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरण भाग मिलाय॥

भक्ति रूपी पदार्थ तभी मिलता है जब गुरु सहायक हों। प्रेम और प्रीति की भक्ति पूर्ण भाग्य से ही प्राप्त होती है।

636

भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकाश।
भक्त लीन गुरु चरण में, भेष जगत की आश॥

भक्ति और वेश में धरती-आकाश का अंतर है। भक्त गुरु के चरणों में लीन रहता है, जबकि वेशधारी जगत से आशा लगाए रहता है।

637

कबीर गुरु की भक्ति करूँ, तज निषय रस चोंज।
बार-बार नहिं पाइये, मानुष जन्म की मौज॥

विषयों के रस और चोचले छोड़कर गुरु की भक्ति करो। मनुष्य-जन्म का यह सुअवसर बार-बार नहीं मिलता।

638

भक्ति दुवारा साँकरा, राई दशवें भाय।
मन को मैगल होय रहा, कैसे आवै जाय॥

भक्ति का द्वार राई के दसवें भाग जितना सँकरा है। मन तो मतवाला हाथी बन बैठा है—वह उसमें से कैसे आ-जा सकेगा?

639

भक्ति बिना नहिं निस्तरे, लाख करे जो कोय।
शब्द सनेही होय रहे, घर को पहुँचे सोय॥

भक्ति के बिना कोई पार नहीं उतरता, चाहे लाख उपाय कर ले। जो शब्द का स्नेही हो जाता है, वही अपने घर पहुँचता है।

640

भक्ति नसेनी मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय।
जिन-जिन आलस किया, जनम जनम पछिताय॥

भक्ति मुक्ति की सीढ़ी है, जिस पर संत दौड़कर चढ़ जाते हैं। जिन्होंने आलस्य किया, वे जन्म-जन्म पछताते हैं।

641

गुरु भक्ति अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
बिना साँच पहुँचे नहीं, महा कठिन व्यवहार॥

गुरु-भक्ति तलवार की धार जैसी कठिन है। सच्चाई के बिना वहाँ पहुँचा नहीं जा सकता—यह अत्यंत कठिन व्यवहार है।

642

भाव बिना नहिं भक्ति जग, भक्ति बिना नहीं भाव।
भक्ति भाव इक रूप है, दोऊ एक सुभाव॥

भाव के बिना भक्ति नहीं और भक्ति के बिना भाव नहीं। भक्ति और भाव एक ही रूप हैं, दोनों का स्वभाव एक है।

643

कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माजै नहीं, होन चहत है दास॥

गुरु-भक्ति का मन में बहुत उत्साह है, पर मन की कामनाएँ माँजी नहीं गईं—और चाहता है दास बनना। भीतर की सफाई पहले चाहिए।

644

कबीर गुरु की भक्ति बिन, धिक जीवन संसार।
धुवाँ का सा धौरहरा, बिनसत लगै न बार॥

गुरु की भक्ति के बिना संसार का जीवन धिक्कार योग्य है। यह धुएँ के महल जैसा है, जिसे मिटने में देर नहीं लगती।

645

जाति बरन कुल खोय के, भक्ति करै चितलाय।
कहें कबीर सतगुरु मिलै, आवागमन नशाय॥

जाति, वर्ण और कुल का अभिमान खोकर जो चित्त लगाकर भक्ति करता है—कबीर कहते हैं, उसे सतगुरु मिलते हैं और आवागमन मिट जाता है।

646

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़ सी रंग।
बिपति पड़े यों छाड़सी, केचुलि तजत भुजंग॥

देखा-देखी की भक्ति का रंग कभी नहीं चढ़ता। विपत्ति पड़ते ही वह ऐसे छूट जाती है जैसे साँप केंचुल त्याग देता है।

647

आरत है गुरु भक्ति करूँ, सब कारज सिध होय।
करम जाल भौजाल में, भक्त फँसे नहिं कोय॥

आर्त भाव से गुरु की भक्ति करो, सारे कार्य सिद्ध हो जाएँगे। कर्म-जाल और भव-जाल में सच्चा भक्त कभी नहीं फँसता।

648

पेटे में भक्ति करै, ताका नाम सपूत।
मायाधारी मसखरें, लेते गये अऊत॥

जो भीतर ही भीतर सच्ची भक्ति करे, वही सपूत है। मायाधारी और ठिठोली करने वाले तो निपूते ही चले गए।

649

निष्पक्षा की भक्ति है, निर्मोही को ज्ञान।
निर्द्वंद्वी की भक्ति है, निर्लोभी निर्बान॥

भक्ति निष्पक्ष की होती है और ज्ञान निर्मोही का। निर्द्वंद्व की भक्ति सधती है और निर्लोभी को ही निर्वाण मिलता है।

650

तिमिर गया रवि देखते, कुमति गयी गुरु ज्ञान।
सुमति गयी अति लोभ ते, भक्ति गयी अभिमान॥

सूर्य देखते ही अंधकार गया और गुरु-ज्ञान से कुबुद्धि। पर अति लोभ से सद्बुद्धि चली गई और अभिमान से भक्ति।

651

खेत बिगारेउ खरतुआ, सभा बिगारी कूर।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में घूर॥

खरपतवार खेत बिगाड़ देता है और मूर्ख सभा को। लालची भक्ति को बिगाड़ देता है—जैसे केसर में कूड़ा मिल जाए।

652

ज्ञान सपूरण न भिदा, हिरदा नाहिं जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय॥

जब तक ज्ञान पूरी तरह भीतर नहीं बिंधता, हृदय शांत नहीं होता। देखा-देखी की भक्ति का रंग ठहरता ही नहीं।

653

भक्ति पंथ बहुत कठिन है, रती न चालै खोट।
निराधार का खोल है, अधर धार की चोट॥

भक्ति का मार्ग बहुत कठिन है, इसमें रत्ती भर भी खोट नहीं चलती। यह निराधार पर टिकने और अधर धार की चोट सहने जैसा है।

654

भक्तन की यह रीति है, बंधे करे जो भाव।
परमारथ के कारने, यह तन रहो कि जाव॥

भक्तों की यही रीति है कि वे जिस भाव से बँध जाएँ उसे निभाते हैं। परमार्थ के लिए यह शरीर रहे या जाए, उन्हें परवाह नहीं।

655

भक्ति महल बहु ऊँच है, दूरिह ते दरशाय।
जो कोई जन भक्ति करे, शोभा बरनि न जाय॥

भक्ति का महल बहुत ऊँचा है, वह दूर से ही दिखाई देता है। जो कोई सच्ची भक्ति करता है, उसकी शोभा वर्णन से परे है।

656

और कर्म सब कर्म है, भक्ति कर्म निहकर्म।
कहें कबीर पुकारि के, भक्ति करो तजि भर्म॥

बाकी सब कर्म बंधन में डालने वाले कर्म हैं, केवल भक्ति ही निष्काम कर्म है। कबीर पुकारकर कहते हैं—भ्रम छोड़कर भक्ति करो।

657

विषय त्याग बैराग है, समता कहिये ज्ञान।
सुखदाई सब जीव सों, यही भक्ति परमान॥

विषयों का त्याग ही वैराग्य है और समता ही ज्ञान। सब जीवों के प्रति सुखदायी होना—यही भक्ति का प्रमाण है।

658

भक्ति निसेनी मुक्ति की, संत चढ़े सब आय।
नीचे बाघिनि लकु रही, कुचल पड़े कू खाय॥

भक्ति मुक्ति की सीढ़ी है जिस पर संत चढ़ जाते हैं। पर नीचे माया रूपी बाघिन घात लगाए बैठी है—जो फिसला, उसे वह दबोच लेती है।

659

भक्ति भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न जाने मेव।
पूरण भक्ति जब मिलै, कृपा करे गुरुदेव॥

भक्ति-भक्ति सब कहते हैं, पर भक्ति का मर्म कोई नहीं जानता। पूर्ण भक्ति तभी मिलती है जब गुरुदेव कृपा करें।

703

कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय।
राम निकुल कुल भेटिया, सब कुल गया बिलाय॥

कुल का अभिमान खो देने से कुल उबर जाता है और उसे पकड़े रखने से डूब जाता है। जो निष्कुल राम से मिल गया, उसका सारा कुल-भेद मिट गया।

705

दुनिया सेती दोसती, मुआ होत भजन में भंग।
एका एकी राम सों, कै साधु न के संग॥

दुनिया से दोस्ती करने पर भजन में विघ्न पड़ता है और जीवन यों ही बीत जाता है। नाता या तो अकेले राम से रखो या साधुओं के संग।

724

भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निरभय होय न कोय॥

भय से ही सब भक्ति करते हैं और भय से ही पूजा होती है। भय जीव के लिए पारस है—पूर्ण निर्भय तो कोई हो ही नहीं सकता।

सत्संग और संगति

68 दोहे

52

हंसा मोती चुगत था, कुच्छ थार भराय।
जो जन मार्ग न जाने, सो तिस कहा कराय॥

हंस मोती चुगता है और थाल भरता जाता है। पर जो व्यक्ति मार्ग ही नहीं जानता, उससे कोई क्या करा सकता है? पात्रता के बिना अवसर भी व्यर्थ हो जाता है।

103

सोना, सज्जन, साधुजन, टूट जुड़ै सौ बार।
दुर्जन कुम्भ कुम्हार के, एके धका दरार॥

सोना, सज्जन और साधु—ये सौ बार टूटकर भी फिर जुड़ जाते हैं। पर दुर्जन कुम्हार के कच्चे घड़े जैसा है, एक ही धक्के में दरक जाता है और फिर नहीं जुड़ता।

117

कबीर जात पुकारया, चढ़ चंदन की डार।
बाट लगाए ना लगे, फिर क्या लेत हमार॥

कबीर चंदन की डाल पर चढ़कर पुकार-पुकारकर मार्ग बताते रहे। जो फिर भी राह पर नहीं आया, उसका उपदेशक क्या ले लेगा? सुनना और अपनाना सुनने वाले पर निर्भर है।

134

हरि संगत शीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निशिवासर सुख निधि, लहा अटल प्रगटा आप॥

हरि की संगति से मन शीतल हो गया और मोह का ताप मिट गया। दिन-रात सुख का भंडार मिल गया और भीतर अटल आत्मस्वरूप स्वयं प्रकट हो गया।

139

कबीरा संगति साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिले, ताकर संग न जाय॥

साधु की संगति में जौ की भूसी भी खानी पड़े तो स्वीकार है, पर कुसंग में खीर और शक्कर का भोजन मिले तो भी वह संग नहीं करना चाहिए। संगति भोजन से बड़ी है।

141

कबीरा कलह अरु कल्पना, सतसंगति से जाय।
दुख बासे भागा फिरै, सुख में रहै समाय॥

कलह और व्यर्थ की कल्पनाएँ सत्संग से दूर हो जाती हैं। तब दुःख स्वयं भागता फिरता है और मनुष्य सुख में समाया रहता है।

142

कबीरा संगति साधु की, जित प्रीत कीजै जाय।
दुर्गति दूर बहावति, देवी सुमति बनाय॥

साधु की संगति ऐसी है जहाँ जाकर प्रीति करनी चाहिए। वह दुर्गति को बहा ले जाती है और सद्बुद्धि प्रदान करती है।

143

कबीरा संगत साधु की, निष्फल कभी न होय।
होमी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय॥

साधु की संगति कभी निष्फल नहीं जाती। चंदन की सुगंध पास आ जाए तो फिर उसे कोई नीम नहीं कहेगा। संग व्यक्ति की पहचान ही बदल देता है।

147

कबीरा मन पँछी भया, भये ते बाहर जाय।
जो जैसे संगति करै, सो तैसा फल पाय॥

मन पक्षी के समान हो गया है, जहाँ चाहे उड़ जाता है। जो जैसी संगति करेगा, वैसा ही फल पाएगा। मन जिस दिशा में जाता है, जीवन उसी ओर मुड़ जाता है।

175

बंधे को बँधा मिले, छूटे कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेय छुड़ाय॥

बँधे हुए को बँधा ही मिले तो छूटने का उपाय कौन बताएगा? उसकी संगति करो जो स्वयं बंधनमुक्त है—वह पल भर में छुड़ा देगा।

180

भज दीना कहूँ और ही, तन साधु न के संग।
कहें कबीर कारी गजी, कैसे लागे रंग॥

मन कहीं और लगा है और शरीर साधुओं के संग बैठा है। कबीर कहते हैं—काले कपड़े पर भला रंग कैसे चढ़ेगा? मन के बिना संगति का कोई असर नहीं।

186

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु संग में, सो बैकुंठ न होय॥

राम ने बुलावा भेजा तो कबीर रो पड़े। जो सुख साधुओं की संगति में है, वह बैकुंठ में भी नहीं। सत्संग का आनंद स्वर्ग से भी बड़ा है।

187

संगति सों सुख्या ऊपजे, कुसंगति सो दुख होय।
कह कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय॥

अच्छी संगति से सुख उपजता है और बुरी संगति से दुःख। कबीर कहते हैं—वहीं जाना चाहिए जहाँ साधुओं का संग मिले।

250

बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़या कलंक।
और पखेरू पी गये, हंस न बोवे चंच॥

बगुले ने पानी जूठा कर दिया और सरोवर पर कलंक लग गया। दूसरे पक्षी तो पी गए, पर हंस ने उसमें चोंच तक नहीं डाली। श्रेष्ठ जन दूषित को स्वीकार नहीं करते।

271

जानि बूझि साँचहि तजें, करै झूठ सूँ नेहु।
ताकि संगति राम जी, सुपिने ही पिनि देहु॥

जो जान-बूझकर सत्य को छोड़ता है और झूठ से प्रेम करता है—हे राम, उसकी संगति मुझे स्वप्न में भी मत देना।

274

कबीरा खाई कोट कि, पानी पिवै न कोई।
जाइ मिलै जब गंग से, तब गंगोदक होइ॥

किले की खाई का पानी कोई नहीं पीता। पर वही जल जब गंगा से जा मिलता है, तब गंगाजल कहलाने लगता है। संगति ही व्यक्ति की प्रतिष्ठा बदल देती है।

276

मूरख संग न कीजिये, लोहा जलि न तिराइ।
कदली-सीप-भुजंग मुख, एक बूंद तिहँ भाइ॥

मूर्ख का संग मत करो, लोहा जल में तैर नहीं सकता। एक ही बूँद केले में कपूर, सीप में मोती और साँप के मुख में विष बन जाती है—पात्र के अनुसार परिणाम बदलता है।

281

कागद केरी नाव री, पाणी केरी गंग।
कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग॥

नाव कागज की है और नदी गंगा जैसी विशाल। कबीर कहते हैं—पाँच विकारों के कुसंग के साथ मैं कैसे पार उतरूँ?

300

सिंहों के लेहँड नहीं, हंसों की नहीं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलै जमात॥

सिंहों के झुंड नहीं होते, हंसों की पंक्तियाँ नहीं लगतीं और लालों की बोरियाँ नहीं भरतीं। इसी तरह सच्चे साधु भीड़ में नहीं चलते।

340

पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हाथि।
जोड़ी बिछटी हंस की, पड़्या बगां के साथि॥

अनमोल वस्तु को ठुकराकर हाथ में कंकड़ ले लिया। हंसों की जोड़ी छूट गई और बगुलों के साथ जा पड़े। कुसंग में पड़कर श्रेष्ठ संग खो दिया।

341

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटि छबाय।
बिन पाणी बिन सबुना, निरमल करै सुभाय॥

निंदा करने वाले को अपने पास ही रखो, आँगन में कुटिया बनवा दो। वह बिना पानी और साबुन के ही तुम्हारे स्वभाव को निर्मल कर देगा।

440

कबीर चंदर के भिरै, नीम भी चंदन होय।
बूड़्यो बाँस बड़ाइया, यों जनि बूड़ो कोय॥

चंदन के पास रहने से नीम भी चंदन हो जाता है। पर बाँस अपने बड़प्पन के अहंकार में डूब गया—ऐसे कोई मत डूबे।

445

कबीर लहरि समुंद्र की, मोती बिखरे आय।
बगुला परख न जानई, हंस चुनि-चुनि खाय॥

समुद्र की लहर मोती बिखेर गई। बगुला उन्हें पहचान नहीं पाता, पर हंस चुन-चुनकर ग्रहण कर लेता है। सत्संग का लाभ पारखी ही उठाता है।

446

साकट कहा न कहि चलै, सुनहा कहा न खाय।
जो कौवा मठ हगि भरै, तो मठ को कहा नशाय॥

नास्तिक क्या नहीं कह डालता और कुत्ता क्या नहीं खा जाता? पर कौआ मठ पर बीट कर दे तो मठ का क्या बिगड़ता है? निंदा से श्रेष्ठता घटती नहीं।

448

कबीर साकट की सभा, तू मति बैठे जाय।
एक गुवाड़े कदि बड़ै, रोज गदहरा गाय॥

नास्तिकों की सभा में जाकर मत बैठो। एक ही बाड़े में गधे और गाय बाँध दिए जाएँ तो गाय का ही नुकसान होता है।

449

संगत सोई बिगुर्चई, जो है साकट साथ।
कंचन कटोरा छाड़ि के, सनहक लीन्ही हाथ॥

वही संगति बिगाड़ती है जो नास्तिक के साथ हो। ऐसा व्यक्ति सोने का कटोरा छोड़कर हाथ में ठीकरा उठा लेता है।

450

साकट संग न बैठिये, करन कुबेर समान।
ताके संग न चलिये, पड़ि हैं नरक निदान॥

नास्तिक के साथ मत बैठो, चाहे वह कर्ण और कुबेर के समान दानी और धनी हो। उसके साथ चलने से अंततः नरक ही मिलता है।

452

साकट सूकर कीकरा, तीनों की गति एक है।
कोटि जतन परमोघिये, तऊ न छाड़े टेक॥

नास्तिक, सूअर और बबूल—तीनों की गति एक जैसी है। करोड़ों यत्न करके समझा लो, फिर भी ये अपना स्वभाव नहीं छोड़ते।

456

घर में साकट स्त्री, आप कहावे दास।
वो तो होगी शूकरी, वो रखवाला पास॥

घर में नास्तिक वातावरण हो और आप स्वयं को भक्त कहलाएँ—यह विरोधाभास टिकता नहीं। भीतर और बाहर एक होना चाहिए।

490

साधुन की झुपड़ी भली, न साकट के गाँव।
चंदन की कुटकी भली, ना बबूल बनराव॥

साधु की झोंपड़ी भली है, नास्तिकों का पूरा गाँव नहीं। चंदन का छोटा टुकड़ा भला है, बबूल का पूरा वन नहीं।

492

जा सुख को मुनिवर रटें, सुर नर करें विलाप।
जो सुख सहजै पाईया, संतों संगति आप॥

जिस सुख के लिए मुनि रटते रहते हैं और देवता-मनुष्य तरसते हैं, वही सुख संतों की संगति में सहज ही मिल जाता है।

536

संगत कीजै साधु की, कभी न निष्फल होय।
लोहा पारस परस ते, सो भी कंचन होय॥

साधु की संगति कभी निष्फल नहीं होती। पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है।

540

आसन तो इकांत करें, कामिनी संगत दूर।
शीतल संत शिरोमनी, उनका ऐसा नूर॥

जो एकांत में आसन लगाते हैं और विषय-संगति से दूर रहते हैं—वे शीतल संत शिरोमणि हैं, उनका तेज ही ऐसा होता है।

576

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
कबीर संगत साधु की, करै कोटि अपराध॥

एक घड़ी, आधी घड़ी या उसकी भी आधी—इतनी देर की साधु-संगति भी करोड़ों अपराधों को धो देती है।

577

कबिरा संगति साधु की, जो करि जाने कोय।
सकल बिरछ चंदन भये, बाँस न चंदन होय॥

साधु की संगति का मर्म कोई विरला ही जानता है। चंदन के पास सारे वृक्ष चंदन हो गए, पर बाँस अपने अहंकार के कारण चंदन न बन सका।

578

साधुन के सतसंग से, थर-थर काँपे देह।
कबहुँ भाव कुभाव ते, जनि मिटि जाय सनेह॥

साधुओं के सत्संग में जाते हुए देह थर-थर काँपती है—कहीं किसी कुभाव के कारण वह स्नेह मिट न जाए। यह श्रद्धा की सतर्कता है।

579

साखी शब्द बहुतै सुना, मिटा न मन का दाग।
संगति सो सुधरा नहीं, ताका बड़ा अभाग॥

साखी और शब्द बहुत सुने, पर मन का दाग नहीं मिटा। जो संगति से भी नहीं सुधरा, उससे बड़ा अभागा कोई नहीं।

580

साध संग अंतर पड़े, यह मति कबहु न होय।
कहें कबीर तिहु लोक में, सुखी न देखा कोय॥

साधु-संग में दूरी पड़ जाए, ऐसी बुद्धि कभी न हो। कबीर कहते हैं—तीनों लोकों में उसके बिना कोई सुखी नहीं देखा।

581

गिरिये परबत सिखर ते, परिये धरिन मंझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ो काली धार॥

पर्वत की चोटी से गिर जाना और धरती पर आ पड़ना स्वीकार है, पर मूर्ख को मित्र मत बनाओ—वह काली धार में डुबो देता है।

582

संत कबीर गुरु के देश में, बसि जावै जो कोय।
कागा ते हंसा बनै, जाति बरन कुछ खोय॥

जो कोई गुरु के देश में जाकर बस जाए, वह कौए से हंस बन जाता है और जाति-वर्ण का भेद खो देता है।

583

भुवंगम बास न बेधई, चंदन दोष न लाय।
सब अंग तो विष सों भरा, अमृत कहाँ समाय॥

चंदन की सुगंध साँप को नहीं बेधती, पर इसमें चंदन का दोष नहीं। जिसका सारा अंग विष से भरा हो, उसमें अमृत कहाँ समाएगा?

584

तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काची सरसों पेरि कै, खरी भया न तेल॥

यदि तुम्हें प्रेम की सच्ची पीड़ा है तो परिपक्व व्यक्ति से नाता जोड़ो। कच्ची सरसों पेरने पर न खली बनती है न तेल।

585

काचा सेती मति मिलै, पाका सेती बान।
काचा सेती मिलत ही, है तन धन की हान॥

कच्चे यानी अपरिपक्व से मेल मत करो, परिपक्व से नाता रखो। कच्चे से मिलते ही तन और धन दोनों की हानि होती है।

586

कोयला भी हो ऊजला, जरि बरि है जो सेव।
मूरख होय न ऊजला, ज्यों कालर का खेत॥

कोयला भी जल-जलकर सफेद राख हो जाता है, पर मूर्ख कभी उजला नहीं होता—जैसे ऊसर खेत कभी उपजाऊ नहीं होता।

587

मूरख को समुझावते, ज्ञान गाँठि का जाय।
कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय॥

मूर्ख को समझाने में अपनी गाँठ का ज्ञान भी चला जाता है। सौ मन साबुन लगा दो, कोयला उजला नहीं होता।

588

ज्ञानी को ज्ञानी मिलै, रस की लूटम लूट।
ज्ञानी को आनी मिलै, हौवै माथा कूट॥

ज्ञानी को ज्ञानी मिले तो रस की लूट मच जाती है। पर ज्ञानी को अज्ञानी मिल जाए तो सिर पीटने के सिवा कुछ नहीं बचता।

589

साखी शब्द बहुतक सुना, मिटा न मन क मोह।
पारस तक पहुँचा नहीं, रहा लोह का लोह॥

बहुत साखी और शब्द सुने, पर मन का मोह न मिटा। पारस तक पहुँचा ही नहीं, इसलिए लोहे का लोहा ही रह गया।

590

ब्राह्मण केरी बेटिया, मांस शराब न खाय।
संगति भई कलाल की, मद बिना रहा न जाए॥

जो कभी मांस-मदिरा छूती तक न थी, कलाल की संगति में पड़कर उसके बिना रह ही नहीं पाती। संगति स्वभाव को पूरी तरह पलट देती है।

591

जीवन जीवन रात मद, अविचल रहै न कोय।
जु दिन जाय सत्संग में, जीवन का फल सोय॥

जीवन और उसका नशा—कुछ भी स्थिर नहीं रहता। जो दिन सत्संग में बीत जाए, वही जीवन का असली फल है।

592

दाग जु लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परमोधिये, कागा हंस न होय॥

नील का दाग सौ मन साबुन से भी नहीं छूटता। करोड़ों यत्न से समझा लो, कौआ हंस नहीं बनता।

593

जो छोड़े तो आँधरा, खाये तो मरि जाय।
ऐसे संग छछूंदरी, दोऊ भाँति पछिताय॥

साँप छछूंदर को छोड़े तो अंधा हो जाए और खाए तो मर जाए। कुसंग ऐसा ही होता है—दोनों ओर से पछतावा।

594

प्रीति कर सुख लेने को, सो सुख गया हिराय।
जैसे पाइ छछूंदरी, पकड़ि साँप पछिताय॥

सुख पाने के लिए प्रीति की, पर वह सुख ही खो गया। जैसे साँप छछूंदर पकड़कर पछताता है, वैसी ही दशा हो जाती है।

595

कबीर विषधर बहु मिले, मणिधर मिला न कोय।
विषधर को मणिधर मिले, विष तजि अमृत होय॥

विष धारण करने वाले तो बहुत मिले, पर मणि धारण करने वाला कोई नहीं मिला। यदि विषधर को मणिधर मिल जाए तो विष छूटकर अमृत हो जाए।

596

सज्जन सों सज्जन मिले, होवे दो दो बात।
गहदा सो गहदा मिले, खावे दो दो लात॥

सज्जन से सज्जन मिले तो दो सार्थक बातें होती हैं। गधे से गधा मिले तो दो-दो लातें ही चलती हैं।

597

तरुवर जड़ से काटिया, जबै सम्हारो जहाज।
तारै पर बोरे नहीं, बाँह गहे की लाज॥

वृक्ष जड़ से काटा गया, फिर भी उसने जहाज बनकर सबको तारा और किसी को डुबोया नहीं। जिसने बाँह पकड़ी, उसकी लाज निभाना यही है।

598

मैं सोचों हित जानिके, कठिन भयो है काठ।
ओछी संगत नीच की, सिर पर पाड़ी बाट॥

मैं हित समझकर सोचता रहा, पर वह काठ की तरह कठोर निकला। नीच की ओछी संगति ने सिर पर आफत ला दी।

599

लकड़ी जल डूबै नहीं, कहो कहाँ की प्रीति।
अपनी सींची जानि के, यही बड़ने की रीति॥

लकड़ी जल में डूबती नहीं—यह कैसी प्रीति? जिसने उसे सींचा था उसी को पहचानकर वह ऊपर तैरती है; बड़प्पन की यही रीति है।

600

साधू संगत परिहरै, करै विषय का संग।
कूप खनी जल बावरे, त्याग दिया जल गंग॥

जो साधु की संगति छोड़कर विषयों का संग करता है, वह बावला गंगा का जल छोड़कर कुआँ खोदने बैठ जाता है।

601

संगति ऐसी कीजिये, सरसा नर सो संग।
लर-लर लोई हेत है, तऊ न छौड़ रंग॥

संगति ऐसे रसिक और सज्जन व्यक्ति से करो जिसका रंग कभी न छूटे—चाहे कितनी ही रगड़ पड़े, वह अपना स्नेह नहीं छोड़ता।

602

तेल तिली सौ ऊपजै, सदा तेल को तेल।
संगति को बेरो भयो, ता ते नाम फुलेल॥

तेल तिल से उपजता है और तेल ही रहता है। पर फूलों की संगति मिल जाए तो वही तेल फुलेल कहलाने लगता है।

603

साधु संग गुरु भक्ति अरु, बढ़त बढ़त बढ़ि जाय।
ओछी संगत खर शब्द रु, घटत-घटत घटि जाय॥

साधु-संग और गुरु-भक्ति बढ़ते-बढ़ते बढ़ती जाती है। ओछी संगति और कटु वचन घटते-घटते सब कुछ घटा देते हैं।

604

संगत कीजै साधु की, होवे दिन-दिन हेत।
साकुट काली कामली, धोते होय न सेत॥

साधु की संगति करो, उससे दिन-प्रतिदिन प्रेम बढ़ता है। नास्तिक तो काली कमली जैसा है, धोने पर भी सफेद नहीं होता।

605

चर्चा करूँ तब चौहटे, ज्ञान करो तब दोय।
ध्यान धरो तब एकिला, और न दूजा कोय॥

चर्चा करनी हो तो चौराहे पर, ज्ञान की बात हो तो दो लोग पर्याप्त हैं। पर ध्यान धरना हो तो अकेले ही—वहाँ दूसरा कोई नहीं चाहिए।

606

संत सुरसरी गंगा जल, आनि पखारा अंग।
मैले से निरमल भये, साधू जन को संग॥

संत गंगाजल के समान हैं, उनके संग से अंग धुल जाते हैं। साधुजन की संगति से मैले भी निर्मल हो जाते हैं।

679

ढोल दमामा दुरबरी, सहनाई संग भेरि।
औसर चले बजाय के, है कोई रखै फेरि॥

ढोल, नगाड़े, शहनाई और भेरी बजाते हुए अवसर निकल जाता है। क्या कोई उसे लौटाकर रख सकता है?

712

कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय।
तब कुल काको लाजि है, चाकिर पाँव का होय॥

कुल और लोकाचार के कारण हंस रूपी जीव नष्ट हो गया। तब कुल की क्या लाज, जब चरणों का सेवक बनना ही श्रेष्ठ था?

719

दीन गवाँयो दूनि संग, दुनी न चली साथ।
पाँच कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ॥

दुनिया के संग में धर्म गँवा दिया और दुनिया साथ भी न चली। मूर्ख ने पाँच विकारों की कुल्हाड़ी अपने ही हाथों अपने ऊपर चला ली।

739

कबीर काया पाहुनी, हंस बटाऊ माहिं।
ना जानूँ कब जायगा, मोहि भरोसा नाहिं॥

यह काया अतिथिशाला है और हंस रूपी जीव उसमें राहगीर। पता नहीं वह कब चल देगा—मुझे कोई भरोसा नहीं।

साधु के लक्षण

99 दोहे

16

शीलवंत सबसे बड़ा, सब रतनन की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन॥

शीलवान अर्थात् सदाचारी व्यक्ति सबसे बड़ा है—वह सभी रत्नों की खान है। तीनों लोकों की समस्त सम्पदा शील में ही समाई हुई है। चरित्र से बड़ी कोई पूँजी नहीं।

46

हद चाले सो मानव, बेहद चले सो साध।
हद बेहद दोनों तजे, ताको भता अगाध॥

जो सीमाओं के भीतर चलता है वह साधारण मनुष्य है, जो सीमा से परे चला जाए वह साधु है। पर जो सीमा और असीम—दोनों को छोड़ दे, उसकी अवस्था अथाह और अवर्णनीय है।

58

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय॥

साधु का स्वभाव सूप जैसा होना चाहिए—जो सार्थक है उसे रख ले और थोथे को उड़ा दे। विवेक यही है कि गुण ग्रहण करो और निस्सार को छोड़ दो।

68

छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोई साधु है, सत का छाननहार॥

सत्यनाम दूध के समान है और सांसारिक व्यवहार पानी के समान। कोई विरला साधु ही हंस के समान होता है, जो दूध और पानी अलग करके सत्य को छान लेता है।

72

नहीं शीतल है चंद्रमा, हिम नहीं शीतल होय।
कबीरा शीतल संत जन, नाम सनेही सोय॥

न चंद्रमा इतना शीतल है, न बर्फ। कबीर कहते हैं—सबसे शीतल तो वे संतजन हैं जो नाम से स्नेह रखते हैं। उनकी संगति ही मन को असली ठंडक देती है।

79

फूटी आँख विवेक की, लखे न संत असंत।
जाके संग दस-बीस हैं, ताको नाम महंत॥

लोगों की विवेक-दृष्टि फूट गई है, वे संत और असंत में भेद नहीं कर पाते। जिसके साथ दस-बीस चेले दिख जाएँ, उसी को महंत मान लेते हैं। भीड़ को योग्यता का प्रमाण मान लेना भूल है।

88

संत ही में सत बाँटिए, रोटी में ते टूक।
कहे कबीर ता दास को, कबहूँ न आवे चूक॥

संतों के बीच सत्य बाँटो और अपनी रोटी में से भी टुकड़ा बाँटो। कबीर कहते हैं—ऐसे सेवक के जीवन में कभी कमी नहीं आती। बाँटने से घटता नहीं, बढ़ता है।

92

सुख सागर का शील है, कोई न पावे थाह।
शब्द बिना साधु नहीं, द्रव्य बिना नहीं शाह॥

शील सुख का सागर है, जिसकी थाह कोई नहीं पा सकता। जैसे धन के बिना कोई सेठ नहीं कहलाता, वैसे ही शब्द-ज्ञान के बिना कोई साधु नहीं होता।

97

कबीरा यह तन जात है, सके तो ठौर लगा।
कै सेवा कर साधु की, कै गोविंद गुन गा॥

कबीर कहते हैं—यह शरीर बीता जा रहा है, हो सके तो इसे किसी सार्थक ठिकाने लगा। या तो संतों की सेवा कर, या भगवान के गुण गा।

109

ऊँचे कुल में जामिया, करनी ऊँच न होय।
सोरन कलश सुरा भरी, साधु निंदा सोय॥

ऊँचे कुल में जन्म लेने से क्या, यदि करनी ऊँची न हो? सोने के कलश में भी यदि मदिरा भरी हो तो संत उसकी निंदा ही करते हैं। पात्र नहीं, भीतर की वस्तु महत्त्व रखती है।

125

संत पुरुष की आरसी, संतों की ही देह।
लखा जो चहे अलख को, उन्हीं में लख लेह॥

संत का शरीर ही दर्पण है। जो उस अलक्ष्य परमात्मा को देखना चाहता है, वह संतों में ही उसे देख ले। संत के आचरण में ईश्वर का प्रतिबिंब दिखाई देता है।

133

साधु सती और सूरमा, इनकी बात अगाध।
आशा छोड़े देह की, तन की अनथक साध॥

साधु, सती और शूरवीर—इनकी बात अथाह है। ये तीनों देह के मोह की आशा छोड़ देते हैं और शरीर से अथक साधना करते हैं।

158

गाँठि न थामहिं बाँधही, नहिं नारी सो नेह।
कह कबीर वा साधु की, हम चरनन की खेह॥

जो न धन की गाँठ बाँधता है और न विषय-आसक्ति में उलझता है—कबीर कहते हैं, हम ऐसे साधु के चरणों की धूल हैं। निर्लोभ और निर्मोह ही साधुता है।

193

ऋद्धि सिद्धि माँगो नहीं, माँगो तुम पै येह।
निसि दिन दरशन साधु को, प्रभु कबीर कहुँ देह॥

मैं ऋद्धि-सिद्धि नहीं माँगता, हे प्रभु! तुमसे बस इतना माँगता हूँ कि रात-दिन संतों के दर्शन होते रहें। कबीर की यही एकमात्र याचना है।

234

ब्राह्मण गुरु जगत् का, साधू का गुरु नाहिं।
उरझि-पुरझि करि भरि रह्या, चारिउं बेदा माहिं॥

ब्राह्मण संसार का गुरु भले हो, साधु का गुरु नहीं हो सकता—क्योंकि वह चारों वेदों के शब्दजाल में ही उलझा रह गया, अनुभव तक नहीं पहुँचा।

277

हरिजन सेती रूसणा, संसारी सूँ हेत।
ते णर कदे न नीपजौ, ज्यूँ कालर का खेत॥

जो हरिभक्तों से रूठा रहता है और सांसारिक लोगों से प्रेम रखता है, वह कभी फलता-फूलता नहीं—जैसे ऊसर खेत में कोई फसल नहीं उगती।

296

स्वाँग पहिरि सो रहा भया, खाया-पीया खूंदि।
जिहि तेरी साधु नीकले, सो तो मेल्ही मूंदि॥

साधु का स्वाँग पहनकर खा-पीकर सो गया। जिस मार्ग से सच्ची साधुता निकलती, उसे तो बंद ही कर दिया।

301

निरबैरी निहकामता, साईं सेती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग सह॥

किसी से बैर न रखना, निष्काम रहना, स्वामी से प्रेम करना और विषयों से अलग रहना—ये संतों के स्वाभाविक लक्षण हैं।

307

हैवर गैवर सघन धन, छत्रपती की नारि।
तास पटेतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि॥

घोड़े, हाथी, अपार धन और छत्रपति की रानी—इन सबकी तुलना उस हरिभक्त की पनिहारिन से भी नहीं की जा सकती। भक्ति के आगे वैभव तुच्छ है।

318

संत न बाँधै गाठड़ी, पेट समाता-तेइ।
साईं सूं सनमुख रहै, जहाँ माँगे तहां देइ॥

संत गठरी नहीं बाँधता, केवल पेट भर लेता है। वह स्वामी के सम्मुख रहता है और जहाँ माँगता है वहीं मिल जाता है।

331

कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास।
कबीर ऐसें होइ रह्या, ज्यूँ पाऊँ तलि घास॥

मैं संतों का चेला हूँ और दासों का भी दास। कबीर ऐसा होकर रह गया है जैसे पैरों तले की घास। यह पूर्ण विनम्रता की अवस्था है।

345

खूंदन तौ धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ॥

रौंदा जाना धरती सहती है और कटना वनराजि। कटु वचन तो केवल हरिभक्त ही सह सकता है, दूसरे से यह सहा नहीं जाता।

441

पशुआ सों पालो परो, रहू-रहू हिया न खीज।
ऊसर बीज न उगसी, बोवै दूना बीज॥

यदि पशु जैसे व्यक्ति से पाला पड़ जाए तो बार-बार मन में खीझो मत। ऊसर भूमि में बीज नहीं उगता, चाहे दूना बीज बो दो।

457

आँखों देखा घी भला, न मुख मेला तेल।
साधु सो झगड़ा भला, ना साकट सों मेल॥

आँखों से देखा हुआ घी भला, पर मुँह में डाला हुआ तेल भी अच्छा नहीं। साधु से झगड़ा भी भला, पर नास्तिक से मेल-जोल अच्छा नहीं।

458

कबीर दर्शन साधु का, बड़े भाग दरशाय।
जो होवै सूली सजा, काँटे ई टरि जाय॥

साधु के दर्शन बड़े भाग्य से होते हैं। उनके प्रभाव से सूली की सजा भी काँटे की चुभन में बदल जाती है।

459

कबीर सोई दिन भला, जा दिन साधु मिलाय।
अंक भरे भरि भेटिये, पाप शरीर जाय॥

वही दिन भला है जिस दिन साधु मिल जाएँ। उन्हें गले लगाकर मिलने से शरीर के पाप दूर हो जाते हैं।

460

कबीर दर्शन साधु के, करत न कीजै कानि।
ज्यों उद्यम से लक्ष्मी, आलस मन से हानि॥

साधु के दर्शन करने में संकोच मत करो। जैसे उद्यम से लक्ष्मी आती है और आलस्य से हानि होती है, वैसे ही यहाँ भी।

461

कई बार नाहिं कर सके, दोय बखत करि लेय।
कबीर साधु दरश ते, काल दगा नहिं देय॥

यदि कई बार न कर सको तो दिन में दो बार ही साधु-दर्शन कर लो। इससे काल धोखा नहीं दे पाता।

462

दूजे दिन नहिं करि सके, तीजे दिन करू जाय।
कबीर साधु दरश ते, मोक्ष मुक्ति फल पाय॥

यदि दूसरे दिन न कर सको तो तीसरे दिन जाकर कर लो। साधु के दर्शन से मोक्ष और मुक्ति का फल मिलता है।

463

तीजे चौथे नहिं करे, बार-बार करू जाय।
यामें विलंब न कीजिये, कहें कबीर समुझाय॥

तीसरे-चौथे दिन भी न कर सको तो जब भी अवसर मिले जाओ। इसमें विलंब मत करो—कबीर समझाकर यही कहते हैं।

464

दोय बखत नहिं करि सके, दिन में करूँ इक बार।
कबीर साधु दरश ते, उतरें भव जल पार॥

दो बार न कर सको तो दिन में एक बार ही कर लो। साधु के दर्शन से भवसागर पार हो जाता है।

466

पाख-पाख नहिं करि सकै, मास मास करू जाय।
यामें देर न लाइये, कहें कबीर समुदाय॥

पखवाड़े में न कर सको तो महीने में एक बार जाओ। इसमें देर मत लगाओ—कबीर सबको यही समझाते हैं।

467

बरस-बरस नाहिं करि सकै, ताको लागे दोष।
कहै कबीर वा जीव सो, कबहु न पावै योष॥

जो वर्ष में एक बार भी साधु-दर्शन न कर सके, उसे दोष लगता है। कबीर कहते हैं—ऐसा जीव कभी संतोष नहीं पाता।

469

मास-मास नहिं करि सकै, उठे मास अलबत्त।
यामें ढील न कीजिये, कहै कबीर अविगत्त॥

महीने-महीने न कर सको तो जब भी अवसर उठे अवश्य कर लो। इसमें ढील मत करो—कबीर यह अटल बात कहते हैं।

470

मात-पिता सुत इस्तरी, आलस्य बंधू कानि।
साधु दरश को जब चलें, ये अटकावै आनि॥

माता, पिता, पुत्र, पत्नी, आलस्य, भाई-बंधु और लोकलाज—जब साधु के दर्शन को चलो तो ये सब आकर रोकते हैं।

471

साधु चलत रो दीजिये, कीजै अति सनमान।
कहें कबीर कछु भेट धरूँ, अपने बित्त अनुमान॥

साधु जाने लगें तो उन्हें रोक लो और खूब सम्मान करो। कबीर कहते हैं—अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ भेंट अवश्य अर्पित करो।

472

इन अटकाया न रुके, साधु दरश को जाय।
कहै कबीर सोई संतजन, मोक्ष मुक्ति फल पाय॥

जो इन बाधाओं से रुके नहीं और साधु के दर्शन को चल पड़े—कबीर कहते हैं, वही संतजन मोक्ष और मुक्ति का फल पाता है।

473

खाली साधु न बिदा करूँ, सुन लीजै सब कोय।
कहै कबीर कछु भेंट धरूँ, जो तेरे घर होय॥

साधु को खाली हाथ विदा मत करो, यह सब सुन लें। कबीर कहते हैं—जो कुछ तुम्हारे घर में हो, वही भेंट कर दो।

474

सुनिये पार जो पाइया, छाजन भोजन आनि।
कहै कबीर सतनं को, देत न कीजै कानि॥

जो पार पाना चाहते हो तो संतों को आश्रय और भोजन दो। कबीर कहते हैं—संतों को देने में कभी संकोच मत करो।

475

कबीर दरशन साधु के, खाली हाथ न जाय।
यही सीख बुध लीजिए, कहै कबीर बुझाय॥

साधु के दर्शन को खाली हाथ मत जाओ। बुद्धिमान लोग यही शिक्षा ग्रहण करें—कबीर समझाकर कहते हैं।

476

टूका माही टूक दे, चीर माहि सो चीर।
साधु देत न सकुचिये, यों कहि कहहिं कबीर॥

अपने टुकड़े में से टुकड़ा दो और अपने वस्त्र में से वस्त्र। साधु को देने में संकोच मत करो—कबीर यही कहते हैं।

477

कबीर लोंग-इलायची, दातुन, माटी पानि।
कहै कबीर संतन को, देत न कीजै कानि॥

लौंग, इलायची, दातुन, मिट्टी और पानी—जो भी साधारण वस्तु हो, संतों को देने में संकोच मत करो। भाव बड़ा है, वस्तु नहीं।

478

साधु आवत देखिकर, हँसी हमारी देह।
माथा का ग्रह उतरा, नैनन बढ़ा सनेह॥

साधु को आते देखकर हमारा शरीर खिल उठा। माथे का बोझ उतर गया और आँखों में स्नेह उमड़ आया।

479

साधु शब्द समुद्र है, जामें रत्न भराय।
मंद भाग मट्ठी भरे, कंकर हाथ लगाय॥

साधु का वचन समुद्र है जिसमें रत्न भरे पड़े हैं। पर भाग्यहीन व्यक्ति मुट्ठी भरता है तो हाथ में कंकड़ ही आते हैं।

480

साधु आया पाहुना, माँगे चार रतन।
धूनी पानी साथरा, सरधा सेती अन्न॥

साधु अतिथि बनकर आए तो चार ही वस्तुएँ माँगता है—धूनी के लिए स्थान, पानी, बिछौना और श्रद्धा से दिया हुआ अन्न।

481

साधु आवत देखिके, मन में करै भरोर।
सो तो होसी चूहड़ा, बसै गाँव की ओर॥

साधु को आते देखकर जिसका मन कुढ़ने लगे, उसका भाव नीच है। भीतर की संकीर्णता ही व्यक्ति को छोटा बनाती है।

483

साधु बिरछ सतज्ञान फल, शीतल शब्द विचार।
जग में होते साधु नहिं, जर भरता संसार॥

साधु वह वृक्ष है जिस पर सत्यज्ञान के फल लगते हैं और जिसके शब्द शीतल छाया देते हैं। यदि जगत में साधु न होते तो संसार जलकर भस्म हो जाता।

484

साधु बड़े परमारथी, शीतल जिनके अंग।
तपन बुझावै ओर की, दे दे अपनो रंग॥

साधु बड़े परोपकारी होते हैं, उनका अंग-अंग शीतल है। वे दूसरों की तपन बुझाते हैं और अपना रंग भी दे देते हैं।

485

आवत साधु न हरखिया, जात न दीया रोय।
कहै कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय॥

साधु के आने पर जो प्रसन्न न हुआ और जाने पर जिसकी आँख न भरी—कबीर कहते हैं, उस व्यक्ति की मुक्ति कैसे होगी?

486

छाजन भोजन प्रीति सो, दीजै साधु बुलाय।
जीवन जस है जगन में, अंत परम पद पाय॥

साधु को बुलाकर प्रेम से आश्रय और भोजन दो। इससे जीवन में यश मिलता है और अंत में परम पद की प्राप्ति होती है।

487

सरवर तरवर संत जन, चौथा बरसे मेह।
परमारथ के कारने, चारों धारी देह॥

सरोवर, वृक्ष, संतजन और वर्षा—इन चारों ने परोपकार के लिए ही देह धारण की है। ये सब देने के लिए हैं, लेने के लिए नहीं।

488

बिरछा कबहुँ न फल भखै, नदी न अंचय नीर।
परमारथ के कारने, साधु धरा शरीर॥

वृक्ष कभी अपना फल नहीं खाता और नदी अपना जल नहीं पीती। इसी तरह साधु ने भी परोपकार के लिए ही शरीर धारण किया है।

489

सुख देवै दुख को हरे, दूर करे अपराध।
कहै कबीर वह कब मिले, परम सनेही साध॥

जो सुख दे, दुःख हरे और अपराध दूर कर दे—कबीर कहते हैं, ऐसा परम स्नेही साधु कब मिलेगा?

491

कह अकाश को फेर है, कह धरती को तोल।
कहा साध की जाति है, कह पारस का मोल॥

आकाश का घेरा कौन बता सकता है और धरती का वजन कौन तौल सकता है? वैसे ही साधु की जाति पूछना और पारस का मोल लगाना व्यर्थ है।

493

साधु सिद्ध बहु अंतरा, साधु मता परचंड।
सिद्ध जुवारे आपको, साधु तारि नौ खंड॥

साधु और सिद्ध में बड़ा अंतर है, साधु का मत कहीं अधिक प्रचंड है। सिद्ध केवल स्वयं को तार लेता है, पर साधु नौ खंडों को तार देता है।

494

आशा वासा संत का, ब्रह्मा लखै न वेद।
षट दर्शन खटपट करै, बिरला पावै भेद॥

संत की आशा और निवास को ब्रह्मा और वेद तक नहीं जान पाते। छहों दर्शन आपस में खटपट करते रहते हैं, पर उस भेद को कोई विरला ही पाता है।

495

कोटि-कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करु धाय।
जब लग साधु न सेवई, तब लग काचा काम॥

करोड़ों तीर्थ कर लो और करोड़ों बार दौड़ लगा लो—जब तक साधु की सेवा नहीं की, तब तक सारा काम कच्चा ही है।

496

वेद थके, ब्रह्मा थके, याके सेस महेस।
गीता हूँ कि गत नहीं, संत किया परवेस॥

वेद थक गए, ब्रह्मा थके, शेष और महेश भी थके। गीता तक उस गति को नहीं पा सकी, पर संत ने उसमें प्रवेश कर लिया।

497

संत मिले जानि बीछुरों, बिछुरों यह मम प्रान।
शब्द सनेही ना मिले, प्राण देह में आन॥

संत मिल जाएँ तो मैं उनसे बिछड़ूँ नहीं, चाहे प्राण ही क्यों न बिछड़ जाएँ। जब तक शब्द का स्नेही न मिले, तब तक प्राण देह में अटके ही रहते हैं।

498

साधु ऐसा चाहिए, दुखै दुखावै नाहिं।
पान फूल छेड़े नहीं, बसै बगीचा माहिं॥

साधु ऐसा होना चाहिए जो न स्वयं दुखी हो, न किसी को दुखी करे। वह बगीचे में रहते हुए भी पत्ते-फूल को नहीं छेड़ता।

499

साधु कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डगमगाय तो गिर पड़े, निहचल उतरे पार॥

साधु कहलाना तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन है। जो डगमगाया वह गिर पड़ा, और जो अडिग रहा वही पार उतरा।

500

साधु कहावत कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर॥

साधु कहलाना खजूर के ऊँचे पेड़ पर चढ़ने जैसा है। चढ़ गया तो प्रेम-रस चखेगा और गिरा तो चकनाचूर हो जाएगा।

501

साधु चाल जु चालई, साधु की चाल।
बिन साधन तो सुधि नाहिं, साधु कहाँ ते होय॥

जो साधु की चाल चले, वही साधु है। साधना के बिना सुध ही नहीं आती, फिर साधुता कहाँ से आएगी?

502 साधु सोई जानिये, चलै साधु की चाल।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल॥

साधु उसी को जानो जो साधु की चाल चले, परमार्थ में रँगा रहे और रसीले वचन बोले।

503 साधु भौरा जग कली, निशि दिन फिरै उदास।
टुक-टुक तहाँ विलंबिया, जहँ शीतल शब्द निवास॥

साधु भौंरा है और जगत कली। वह रात-दिन उदास घूमता रहता है और थोड़ी देर वहीं ठहरता है जहाँ शीतल शब्द का निवास हो।

504 साधू जन सब में रमें, दुख न काहू देहि।
अपने मत गाड़ा रहै, साधु न का मत येहि॥

साधुजन सबमें घुल-मिल जाते हैं और किसी को दुःख नहीं देते। वे अपने मत पर दृढ़ रहते हैं—साधु का यही स्वभाव है।

505 साधु सती और सूरमा, राखा रहै न ओट।
माथा बाँधि पताक सों, नेजा घालें चोट॥

साधु, सती और शूरवीर छिपकर नहीं रहते। वे माथे पर पताका बाँधकर सामने आते हैं और खुलकर वार करते हैं।

506 साधु-साधु सब एक है, जस अफीम का खेत।
कोई विवेकी लाल है, और सेत का सेत॥

देखने में सब साधु एक जैसे लगते हैं, जैसे अफीम का खेत। पर उनमें कोई विवेकी लाल फूल जैसा होता है और बाकी सफेद के सफेद।

507 साधु सती औ सिंह को, ज्यों ले घन त्यों शोभ।
सिंह न मारे मेढ़का, साधु न बाँधै लोभ॥

साधु, सती और सिंह की शोभा उनके स्वभाव में है। सिंह मेंढक नहीं मारता और साधु को लोभ नहीं बाँध सकता।

508 साधु तो हीरा भया, न फूटै धन खाय।
न वह बिनभ कुम्भ ज्यों, ना वह आवै जाय॥

साधु हीरे के समान हो गया—वह चोट खाकर भी टूटता नहीं। वह कच्चे घड़े की तरह नष्ट नहीं होता और न आवागमन में पड़ता है।

511 दुख-सुख एक समान है, हरष शोक नहिं व्याप।
उपकारी निहकामता, उपजै छोह न ताप॥

जिसके लिए सुख-दुःख समान हैं, जिस पर हर्ष-शोक नहीं व्यापते, जो निष्काम भाव से उपकार करता है और जिसमें क्षोभ या ताप नहीं उपजता—वही संत है।

515

मानपमान न चित धरै, औरन को सनमान।
जो कोई आशा करै, उपदेशै तेहि ज्ञान॥

मान-अपमान को मन में न रखे, दूसरों का सम्मान करे और जो कोई जिज्ञासा लेकर आए उसे ज्ञान का उपदेश दे।

517

जौन चाल संसार की, जौ साधु को नाहिं।
डिंभ चाल करनी करे, साधु कहो मत ताहि॥

जो संसार की चाल है वह साधु की नहीं होती। जो पाखंड की चाल चले, उसे साधु मत कहो।

519

शीलवंत दृढ़ ज्ञान मत, अति उदार चित होय।
लज्जावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय॥

शीलवान हो, ज्ञान में दृढ़ हो, अत्यंत उदार चित्त हो, लज्जाशील और निष्कपट हो तथा कोमल हृदय वाला हो—यही साधु का स्वरूप है।

520

कोई आवै भाव ले, कोई अभाव लै आव।
साधु दोऊ को पोषते, भाव न गिनै अभाव॥

कोई श्रद्धा लेकर आता है और कोई विरोध लेकर। साधु दोनों का ही पोषण करते हैं, वे भाव और अभाव का भेद नहीं गिनते।

521

संत न छाड़ै संतता, कोटिक मिलै असंत।
मलय भुवंगय बेधिया, शीतलता न तजंत॥

करोड़ों दुर्जन मिल जाएँ तो भी संत अपनी संतता नहीं छोड़ता। चंदन का वृक्ष साँपों से लिपटा रहकर भी अपनी शीतलता नहीं त्यागता।

522

कमल पत्र हैं साधुजन, बसें जगत के माहिं।
बालक केरि धाय ज्यों, अपना जानत नाहिं॥

साधुजन कमल-पत्र के समान हैं—संसार में रहते हुए भी उससे अलिप्त। जैसे धाय बालक को पालती है पर अपना नहीं मानती।

523

बहता पानी निरमला, बंदा गंदा होय।
साधू जन रमा भला, दाग न लागै कोय॥

बहता पानी निर्मल रहता है और रुका हुआ गंदा हो जाता है। इसी तरह साधु का विचरते रहना अच्छा है, उससे कोई दाग नहीं लगता।

524

बँधा पानी निरमला, जो टूक गहिरा होय।
साधु जन बैठा भला, जो कुछ साधन होय॥

रुका हुआ पानी भी निर्मल रहता है यदि वह पर्याप्त गहरा हो। इसी तरह साधु का एक स्थान पर बैठना भी अच्छा है, बशर्ते साधना गहरी हो।

525

एक छाड़ि पय को गहें, ज्यों रे गऊ का बच्छ।
अवगुण छाड़ै गुण गहै, ऐसा साधु लच्छ॥

जैसे गाय का बछड़ा और सब छोड़कर दूध ही ग्रहण करता है, वैसे ही साधु अवगुण छोड़कर गुण ग्रहण करता है—यही उसका लक्षण है।

526

जौन भाव उपर रहै, भितर बसावै सोय।
भीतर और न बसावई, ऊपर और न होय॥

जो भाव बाहर दिखे वही भीतर भी हो। भीतर कुछ और न बसा हो और बाहर कुछ और न दिखे—यही सरलता है।

527

उड़गण और सुधाकरा, बसत नीर के संग।
यों साधू संसार में, कबीर फड़त न फंद॥

तारे और चंद्रमा जल में प्रतिबिंबित होकर भी उससे लिपटते नहीं। वैसे ही साधु संसार में रहकर भी उसके फंदे में नहीं फँसता।

528

तन में शीतल शब्द है, बोले वचन रसाल।
कहें कबीर ता साधु को, गंजि सकै न काल॥

जिसके भीतर शीतल शब्द बसा है और जो रसीले वचन बोलता है—कबीर कहते हैं, उस साधु को काल भी नष्ट नहीं कर सकता।

529

तूटै बरत आकाश सों, कौन सकत है झेल।
साधु सती और सूर का, अनी ऊपर का खेल॥

आकाश से गिरती बिजली को कौन झेल सकता है? साधु, सती और शूरवीर का खेल भी वैसा ही है—भाले की नोक पर चलने जैसा।

530

ढोल दमामा गड़झड़ी, सहनाई और तूर।
तीनों निकसि न बाहुरें, साधु सती औ सूर॥

ढोल, नगाड़े, शहनाई और तुरही बजने के बीच जो निकल पड़ते हैं—साधु, सती और शूरवीर—ये तीनों फिर पीछे नहीं लौटते।

532

जुवा चोरी मुखबिरी, ब्याज बिरानी नारि।
जो चाहै दीदार को, इतनी वस्तु निवारि॥

जुआ, चोरी, चुगली, ब्याजखोरी और पराई स्त्री—जो प्रभु के दर्शन चाहता है, वह इन सबका त्याग कर दे।

533

कबीर मेरा कोइ नहीं, हम काहू के नाहिं।
पारै पहुँची नाव ज्यों, मिलि कै बिछुरी जाहिं॥

मेरा कोई नहीं और मैं भी किसी का नहीं। जैसे नाव पार पहुँचते ही यात्री मिलकर बिछड़ जाते हैं, वैसा ही यह संसार है।

534 संत समागम परम सुख, जान अल्प सुख और।
मान सरोवर हंस है, बगुला ठौरे ठौर॥

संतों का समागम ही परम सुख है, बाकी सब सुख तुच्छ हैं। हंस केवल मानसरोवर में मिलता है, बगुले तो जगह-जगह मिल जाते हैं।

535 संत मिले सुख ऊपजै, दुष्ट मिले दुख होय।
सेवा कीजै साधु की, जन्म कृतारथ होय॥

संत मिलने से सुख उपजता है और दुष्ट मिलने से दुःख। साधु की सेवा करो, जन्म कृतार्थ हो जाएगा।

541 यह कलियुग आयो अबै, साधु न जाने कोय।
कामी क्रोधी मस्खरा, तिनकी पूजा होय॥

अब कलियुग आ गया है, साधु को कोई नहीं पहचानता। कामी, क्रोधी और ठिठोली करने वालों की ही पूजा होती है।

543 साधु दरशन महाफल, कोटि यज्ञ फल लेह।
इक मंदिर को का पड़ी, नगर शुद्ध करि लेह॥

साधु के दर्शन का महाफल है, करोड़ों यज्ञों का फल मिल जाता है। एक मंदिर की क्या बात, वे तो पूरे नगर को शुद्ध कर देते हैं।

544 साधु दरश को जाइये, जेता धरिये पाँय।
डग-डग पे असमेध जग, है कबीर समुझाय॥

साधु के दर्शन को जाते हुए जितने कदम रखे जाएँ, हर कदम पर अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है—कबीर यही समझाते हैं।

545 संत मता गजराज का, चालै बंधन छोड़।
जग कुत्ता पीछे फिरें, सुनै न वाको सोर॥

संत का मत गजराज जैसा है—वह बंधन तोड़कर अपनी चाल चलता है। संसार रूपी कुत्ते पीछे भौंकते फिरते हैं, पर वह उनका शोर सुनता ही नहीं।

546 आज काल दिन पाँच में, बरस पाँच जुग पंच।
जब तब साधू तारसी, और सकल पर पंच॥

आज-कल, पाँच दिन, पाँच वर्ष या पाँच युग—देर-सबेर साधु ही तारेंगे। बाकी सब तो केवल पंचायती बातें हैं।

547 साधु ऐसा चाहिए, जहाँ रहै तहँ गैब।
बानी के बिस्तार में, ताकूँ कोटिक ऐब॥

साधु ऐसा चाहिए जो जहाँ रहे, गुप्त-सा रहे। जो वाणी के विस्तार में लगा रहता है, उसमें करोड़ों दोष आ जाते हैं।

548

संत होत हैं हेत के, हेतु तहाँ चलि जाय।
कहें कबीर के हेत बिन, गरज कहाँ पितयाय॥

संत प्रेम के वश होते हैं और जहाँ प्रेम हो वहीं चले जाते हैं। कबीर कहते हैं—प्रेम के बिना केवल गरज से कहाँ विश्वास बनता है?

549

हेत बिना आवै नहीं, हेत तहाँ चलि जाय।
कबीर जल और संतजन, नवें तहाँ ठहराय॥

प्रेम के बिना संत नहीं आते, और जहाँ प्रेम हो वहाँ स्वयं चले जाते हैं। जल और संतजन—दोनों वहीं ठहरते हैं जहाँ झुकाव हो।

550

साधु ऐसा चाहिए, जाका पूरा मंग।
विपत्ति पड़े छाड़ै नहीं, चढ़े चौगुना रंग॥

साधु ऐसा चाहिए जिसका संकल्प पूरा हो। विपत्ति पड़ने पर भी वह साथ न छोड़े, बल्कि उसका रंग चौगुना चढ़ जाए।

551

संत सेव गुरु बंदगी, गुरु सुमिरन वैराग।
येता तबही पाइये, पूरन मस्तक भाग॥

संतों की सेवा, गुरु की वंदना, गुरु का स्मरण और वैराग्य—ये सब तभी मिलते हैं जब मस्तक का भाग्य पूर्ण हो।

पाखंड और आडंबर

29 दोहे

3

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर॥

हाथ में माला फेरते-फेरते युग बीत गया, पर मन की चंचलता और विकार नहीं बदले। कबीर कहते हैं—हाथ की माला छोड़ो और मन के मनके को फेरो; बाहरी दिखावे से नहीं, भीतर के सुधार से भक्ति होती है।

6

कबीरा माला मनहि की, और संसारी भीख।
माला फेरे हरि मिले, गले रहट के देख॥

सच्ची माला तो मन की होती है, बाकी सब सांसारिक दिखावा है। यदि केवल माला फेरने से ही भगवान मिल जाते, तो रहट में गले-गले माला-सी घूमती घड़ियाँ सबसे पहले उन्हें पा लेतीं।

43

कबीरा जपना काठ की, क्या दिखलावे मोय।
हृदय नाम न जपेगा, यह जपनी क्या होय॥

कबीर कहते हैं—काठ की माला दिखाकर मुझे क्या प्रभावित करना चाहते हो? जब हृदय से नाम का जप ही नहीं होगा, तो यह माला किस काम की? आडंबर भक्ति का विकल्प नहीं।

69

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझमें, बस जाग सके तो जाग॥

जैसे तिल में तेल छिपा है और चकमक पत्थर में आग—वैसे ही तेरा स्वामी तेरे ही भीतर बसा है। बस जाग सके तो जाग जा। ईश्वर बाहर नहीं, भीतर है।

121

साईं आगे साँच है, साईं साँच सुहाय।
चाहे बोले केस रख, चाहे घोंट मुंडाय॥

प्रभु के सामने केवल सच्चाई चलती है, उन्हें सत्य ही भाता है। फिर चाहे कोई केश रखे या सिर मुँड़ा ले—बाहरी वेश से कुछ नहीं होता। भीतर की सच्चाई ही मायने रखती है।

128

प्रेमभाव एक चाहिए, भेष अनेक बनाय।
चाहे घर में वास कर, चाहे बन को जाय॥

एक प्रेमभाव होना चाहिए, भेष चाहे जितने बना लो। फिर चाहे गृहस्थ रहो या वन में चले जाओ—स्थान से नहीं, भाव से भक्ति होती है।

170

न्हाये धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय॥

नहाने-धोने से क्या हुआ यदि मन का मैल न गया? मछली सदा जल में ही रहती है, फिर भी उसकी दुर्गंध धोने से नहीं जाती। बाहरी शुद्धि भीतरी शुद्धि नहीं है।

173

पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजूँ पहार।
याते ये चक्की भली, पीस खाय संसार॥

यदि पत्थर पूजने से भगवान मिलते तो मैं पूरा पहाड़ ही पूज लेता। इससे तो वह चक्की भली है जिससे पीसकर संसार भोजन पाता है। निर्जीव पूजा से उपयोगी वस्तु बेहतर है।

178

मूँड़ मुड़ाये हरि मिले, सब कोई लेय मुड़ाय।
बार-बार के मुड़ते, भेड़ न बैकुंठ जाय॥

यदि सिर मुँड़ाने से भगवान मिलते तो सब मुँड़ा लेते। भेड़ तो बार-बार मुँड़ती है, फिर भी वह बैकुंठ नहीं जाती। बाहरी क्रिया से मुक्ति नहीं मिलती।

258

काजी-मुल्ला भ्रमिया, चल्या युनीं कै साथ।
दिल थे दीन बिसारिया, करद लई जब हाथ॥

काजी और मुल्ला भी भ्रम में पड़कर भीड़ के साथ चल दिए। जब हाथ में छुरी उठा ली, तब दिल से धर्म को ही भुला बैठे। हिंसा में धर्म नहीं बचता।

263

तीरथ तो सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाय।
कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाय॥

तीर्थ केवल फैली हुई बेलें हैं जिन्होंने सारे जगत को ढँक रखा है। कबीर ने तो जड़ ही उखाड़ दी—अब वह विष कौन खाए? बाहरी कर्मकांड की जड़ भ्रम है।

264

जप-तप दीसैं थोथरा, तीरथ व्रत बेसास।
सूवै सैंबल सेविया, यौ जग चल्या निरास॥

जप-तप थोथे दिखाई देते हैं और तीर्थ-व्रत का भरोसा भी व्यर्थ। जैसे तोता सेमल के फल की आस में बैठा रहता है और खाली हाथ लौटता है, वैसे ही यह जग निराश चला जाता है।

265

जेती देखौ आत्म, तेता सालिगराम।
राधू प्रतषि देव है, नहीं पाथ सूँ काम॥

जितनी आत्माएँ दिखती हैं, उतने ही शालिग्राम हैं। साधु प्रत्यक्ष देवता है—पत्थर की मूर्ति से कोई काम नहीं। जीवित चेतना ही सच्चा देवस्थान है।

266

कबीर दुनिया देहुरै, सीत नवावन गंग जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताहि सौ ल्यो लाइ॥

दुनिया मंदिर-मंदिर सिर नवाती है और गंगा नहाने जाती है। पर हरि तो हृदय के भीतर बसते हैं—तू अपना मन उन्हीं से लगा।

269

उज्ज्वल देखि न धीजिये, बग ज्यूँ माडै ध्यान।
धीर बौठि चपेटसी, यूँ ले बूड ज्ञान॥

उजला रंग देखकर विश्वास मत करो—बगुला भी ध्यान लगाए बैठा दिखता है। वह धीरे से झपट्टा मारता है और ज्ञान को डुबो देता है। दिखावटी साधु से सावधान रहो।

292

माला पहिरै मनभुषी, ता थै कछू न होइ।
मन माला को फैरता, जग उजियारा सोइ॥

मन को भुलावा देने के लिए माला पहनने से कुछ नहीं होता। जो मन की माला फेरता है, उसी से सारा जगत उजाला पाता है।

295

बैसनो भया तौ क्या भया, बूझा नहीं बबेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दगहया अनेक॥

वैष्णव बन जाने से क्या हुआ, यदि विवेक नहीं समझा? छाप-तिलक लगाकर अनेकों को ठग लिया। चिह्न धारण करना धर्म नहीं है।

298

एष ले बूढ़ी पथमी, झूठे कुल की लार।
अलष बिसारयो भेष में, बूड़े काली धार॥

झूठे कुल के अभिमान की लार में सारी पृथ्वी डूब गई। भेष के चक्कर में उस अलक्ष्य को भुला दिया और काली धार में डूब गए।

438

झिरमिर झिरमिर बरसिया, पाहन ऊपर मेह।
माटी गलि पानी भई, पाहन वाही नेह॥

पत्थर पर रिमझिम वर्षा होती रही। मिट्टी तो गलकर पानी हो गई, पर पत्थर वैसा का वैसा ही रहा। कठोर हृदय पर उपदेश का असर नहीं होता।

552

चाल बकुल की चलत हैं, बहुरि कहावै हंस।
ते मुक्ता कैसे चुंगे, पड़े काल के फंस॥

चाल बगुले की चलते हैं और कहलाते हैं हंस। ऐसे लोग मोती कैसे चुनेंगे? वे तो काल के फंदे में ही पड़ेंगे।

553

बाना पहिरे सिंह का, चलै भेड़ की चाल।
बोली बोले सियार की, कुत्ता खवै फाल॥

पहनावा सिंह का और चाल भेड़ की, बोली सियार जैसी—ऐसे व्यक्ति की दुर्दशा निश्चित है। बाहरी वेश भीतर की कायरता नहीं ढकता।

554

साधु भया तो क्या भया, माला पहिरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार॥

साधु बन जाने और चार मालाएँ पहन लेने से क्या हुआ? बाहर वेश बना लिया, पर भीतर तो कचरा ही भरा है।

558

पाँच सात सुमता भरी, गुरु सेवा चित लाय।
तब गुरु आज्ञा लेय के, रहे देशांतर जाय॥

पहले मन में सद्बुद्धि भरे और चित्त लगाकर गुरु की सेवा करे। फिर गुरु की आज्ञा लेकर ही देशांतर जाए।

559

गुरु के सनमुख जो रहै, सहै कसौटी दुख।
कहें कबीर तो दुख पर वारों, कोटिक सूख॥

जो गुरु के सम्मुख रहकर कसौटी का दुःख सहता है—कबीर कहते हैं, उस दुःख पर करोड़ों सुख न्योछावर हैं।

560

मन मैला तन ऊजरा, बगुला कपटी अंग।
तासों तो कौवा भला, तन मन एकहि रंग॥

मन मैला और शरीर उजला—बगुले का यही कपटी रूप है। उससे तो कौआ भला, जिसका तन और मन एक ही रंग का है।

561

भेष देख मत भूलिये, बूझि लीजिये ज्ञान।
बिना कसौटी होत नहीं, कंचन की पहिचान॥

वेश देखकर धोखा मत खाओ, उसका ज्ञान परख लो। बिना कसौटी के सोने की पहचान नहीं होती।

562

कवि तो कोटि-कोटि हैं, सिर के मुड़े कोट।
मन के कूड़े देखि करि, ता संग लीजै ओट॥

कवि करोड़ों हैं और सिर मुँड़ाए हुए भी करोड़ों। पर जिनका मन कूड़े से भरा हो, उनके संग से दूरी बना लो।

564

फाली फूली गाडरी, ओढ़ि सिंह की खाल।
साँच सिंह जब आ मिले, गाडर कौन हवाल॥

भेड़ सिंह की खाल ओढ़कर फूली फिरती है। पर जब सच्चा सिंह सामने आ जाएगा, तब उस भेड़ का क्या हाल होगा?

565

धारा तो दोनों भली, बिरही के बैराग।
गिरही दासातन करे, बैरागी अनुराग॥

दोनों ही धाराएँ भली हैं। गृहस्थ सेवा-भाव निभाए और वैरागी अनुराग में रहे—दोनों अपने-अपने मार्ग पर श्रेष्ठ हैं।

माया और मोह

20 दोहे

17

माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर॥

न माया मरी, न मन मरा—शरीर बार-बार जन्मते और मरते रहे। आशा और तृष्णा कभी नहीं मरीं। दास कबीर कहते हैं कि इच्छाओं का अंत ही असली मृत्यु से मुक्ति है।

27

माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय।
भगता के पीछे लगे, सम्मुख भागे सोय॥

माया और छाया एक जैसी हैं, यह भेद कोई विरला ही समझता है। जो इसके पीछे भागता है उससे यह दूर भागती है, और जो इससे विमुख होकर भक्ति करता है उसके पीछे-पीछे चली आती है।

114

यह माया है चूहड़ी, और चूहड़ा कीजो।
बाप-पूत उरभाय के, संग ना काहो केहो॥

यह माया नीच वृत्ति वाली है, इसे दूर ही रखो। यह बाप और बेटे तक को आपस में उलझा देती है और किसी का सगा साथ नहीं देती। माया का संग सर्वथा त्याज्य है।

144

को छूटौ इहिं जाल परि, कत फुरंग अकुलाय।
ज्यों-ज्यों सुरझि भजौ चहै, त्यों-त्यों उरझत जाय॥

इस माया-जाल में फँसकर कौन छूट पाया है? पक्षी व्यर्थ ही छटपटाता है—जितना वह सुलझकर भागना चाहता है, उतना ही अधिक उलझता जाता है।

179

माया तो ठगनी बनी, ठगत फिरे सब देश।
जा ठग ने ठगनी ठगो, ता ठग को आदेश॥

माया ठगिनी बनकर सारे देश में सबको ठगती फिरती है। जिस ठग ने इस ठगिनी को ही ठग लिया, उस ठग को मेरा प्रणाम। माया को जीतने वाला ही सच्चा विजेता है।

215

पूत पियारौ पिता कों, गौहनि लागो घाइ।
लोभ-मिठाई हाथ दे, आपण गयो भुलाइ॥

पुत्र पिता को प्यारा है और पीछे-पीछे दौड़ा चला आता है। पिता उसके हाथ में लोभ रूपी मिठाई थमाकर स्वयं खिसक जाता है। माया ऐसे ही जीव को बहलाकर भटका देती है।

227

परनारी का राचणौ, जिसकी लहसण की खानि।
खूणें बेसिर खाइय, परगट होइ दिवानि॥

पराई स्त्री में आसक्ति लहसुन खाने जैसी है—चाहे कोने में छिपकर खाओ, गंध प्रकट हो ही जाती है। दुराचार कभी छिपा नहीं रहता।

235

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूँ आदर होइ॥

कलियुग खोटा हो गया है, सच्चा मुनि कोई नहीं मिलता। लालची, लोभी और ठिठोली करने वालों का ही आदर होता है।

245

तृष्णा सींची ना बुझै, दिन दिन बधती जाइ।
जवासा के रूष ज्यूँ, घण मेहां कुमिलाइ॥

तृष्णा सींचने से बुझती नहीं, दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। जैसे जवासे का पौधा वर्षा में और मुरझा जाता है—इच्छाएँ पूरी करने से घटती नहीं।

246

कबीर सो धन संचिये, जो आगे कू होइ।
सीस चढ़ाये गाठ की, जात न देख्या कोइ॥

वही धन संचित करो जो आगे काम आए। सिर पर लादी हुई गठरी को साथ जाते किसी ने नहीं देखा—पुण्य ही आगे चलता है।

248

कबीर माया पापरगी, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंधै पड़्या, गया कबीर काटि॥

माया पापिन फंदा लेकर बाजार में बैठी है। सारा जगत उस फंदे में फँस गया, केवल कबीर उसे काटकर निकल गया।

251

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।
जिहि धारि जिता बाधावणा, तिहीं तिता अंदोह॥

इस संसार का माया-मोह झूठा है। जिसने जितने अधिक बंधन बाँध रखे हैं, उसे उतनी ही अधिक व्यथा भोगनी पड़ती है।

252

माया तजी तौ क्या भया, मानि तजि नहीं जाइ।
मानि बड़े मुनियर मिले, मानि सबनि को खाइ॥

माया छोड़ देने से क्या हुआ, यदि मान-अभिमान नहीं छूटा? अभिमान ने बड़े-बड़े मुनियों को निगल लिया—यह सबको खा जाता है।

275

माषी गुड़ में गड़ि रही, पंख रही लपटाई।
ताली पीटै सिरि घुनै, मीठै बोई माइ॥

मक्खी गुड़ में धँस गई और उसके पंख उसी में लिपट गए। अब वह हाथ मलती और सिर धुनती है। मीठे लोभ में फँसकर जीव ऐसे ही छटपटाता है।

338

कोई एक राखै साबधाँ, चेतनि पहरै जागि।
बस्तर बासन सूँ खिसै, चोर न सकई लागि॥

कोई विरला ही सावधान रहता है और चेतना का पहरा देकर जागता है। ऐसा व्यक्ति वस्त्र-बर्तन के मोह से हट जाता है, तब कोई चोर उसे लूट नहीं सकता।

539

आशा तजि माया तजै, मोह तजै अरु मान।
हरष शोक निंदा तजै, कहें कबीर संत जान॥

जो आशा, माया, मोह, मान, हर्ष, शोक और निंदा—इन सबका त्याग कर दे, कबीर कहते हैं उसी को संत जानो।

563

बोली ठोली मस्खरी, हँसी खेल हराम।
मद माया और इस्तरी, नहिं संतन के काम॥

ठिठोली, उपहास, व्यर्थ की हँसी-खेल, नशा, माया और विषय-आसक्ति—ये संतों के काम की वस्तुएँ नहीं हैं।

737

क्या करिये क्या जोड़िये, तोड़े जीवन काज।
छाड़ि छाड़ि सब जात है, देह गेह धन राज॥

क्या करें और क्या जोड़ें, जब जीवन का काम ही टूट जाता है? देह, घर, धन और राज—सब छोड़-छोड़कर जाना पड़ता है।

740

जो तू परा है फंद में, निकसेगा कब अंध।
माया मद तोकूँ चढ़ा, मत भूले मतिमंद॥

हे अंधे, तू फंदे में पड़ा है—निकलेगा कब? माया का नशा तुझ पर चढ़ा है, हे मंदबुद्धि, मत भूल।

743

मन मुवा माया मुई, संशय मुवा शरीर।
अविनाशी जो न मरे, तो क्यों मरे कबीर॥

मन मर गया, माया मरी, संशय और शरीर भी मरे। पर जो अविनाशी है वह नहीं मरता—फिर कबीर क्यों मरे?

काल और मृत्यु

121 दोहे

19

रात गँवाई सोय के, दिवस गँवाया खाय।
हीरा जन्म अनमोल था, कौड़ी बदले जाय॥

रात सोने में और दिन खाने-पीने में बीत गया। यह मनुष्य-जन्म हीरे के समान अनमोल था, पर कौड़ियों के मोल गँवा दिया गया। जीवन का उद्देश्य भोग नहीं, आत्म-कल्याण है।

22

दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारंबार।
तरुवर ज्यों पत्ती झड़े, बहुरि न लागे डार॥

मनुष्य-जन्म अत्यंत दुर्लभ है, यह देह बार-बार नहीं मिलती। जैसे वृक्ष से गिरा पत्ता फिर उसी डाली पर नहीं लगता, वैसे ही बीता जीवन लौटकर नहीं आता।

25

माँगन मरण समान है, मति माँगो कोई भीख।
माँगन से तो मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

माँगना मृत्यु के समान है—किसी से भीख मत माँगो। सतगुरु की शिक्षा यही है कि हाथ फैलाने से मर जाना बेहतर है। स्वाभिमान और परिश्रम से जीना ही मनुष्य की शोभा है।

33

दस द्वारे का पिंजरा, तामें पंछी का कौन।
रहे को अचरज है, गए अचंभा कौन॥

यह शरीर दस द्वारों वाला पिंजरा है, इसमें रहने वाला जीव-पक्षी किसी का अपना नहीं। आश्चर्य तो इसका ठहरे रहने पर है; उड़ जाने पर अचरज कैसा? मृत्यु स्वाभाविक है, जीवन ही विस्मय है।

45

बँधे मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जेहि के राम अधार॥

बंधन में पड़ा मरा, रोगी मरा, सारा संसार ही मरता रहा। एक कबीर नहीं मरा, क्योंकि उसका आधार राम-नाम है। नाम का सहारा जिसे मिल जाए, वह अमर हो जाता है।

51

समझाये समझे नहीं, पर के साथ बिकाय।
मैं खींचत हूँ आपके, तू चला जमपुर जाए॥

समझाने पर भी जो नहीं समझता और दूसरों के बहकावे में बिक जाता है—मैं तुझे अपनी ओर खींच रहा हूँ, और तू यमपुरी की ओर बढ़ा जा रहा है। हठ अंततः पतन कराता है।

91

काया काठी काल घुन, जतन-जतन सो खाय।
काया वैद्य ईश बस, मर्म न काहू पाय॥

यह शरीर लकड़ी है और काल घुन के समान, जो धीरे-धीरे उसे खाता रहता है। इस काया का वैद्य केवल ईश्वर है; इसका रहस्य कोई नहीं पा सका।

118

लोग भरोसे कौन के, बैठे रहें उरगाय।
जीय रही लूटत जम फिरे, मूढ़ा लूटे कसाय॥

लोग किसके भरोसे निश्चिंत होकर बैठे हैं? यमराज चारों ओर जीवन लूटता फिर रहा है और मूर्ख को कसाई की तरह लूट ले जाता है। यह प्रमाद के विरुद्ध चेतावनी है।

123

खेत ना छोड़े सूरमा, जूझे दो दल मोह।
आशा जीवन मरण की, मन में राखें नोह॥

सच्चा वीर रणभूमि नहीं छोड़ता, चाहे दोनों ओर से मोह के दल घेर लें। वह जीने-मरने की आशा मन में नहीं रखता। साधना में भी ऐसी ही अडिगता चाहिए।

131

केतन दिन ऐसे गए, अन रूचे का नेह।
अवसर बोवे उपजे नहीं, जो नहीं बरसे मेह॥

कितने ही दिन ऐसे बीत गए जिनमें बेमन का स्नेह निभाया गया। जैसे वर्षा न हो तो बोया बीज नहीं उगता, वैसे ही भाव के बिना संबंध फलते नहीं।

149

कहे कबीर देय तू, जब तक तेरी देह।
देह खेह हो जाएगी, कौन कहेगा देह॥

कबीर कहते हैं—जब तक यह देह है तब तक दान करता जा। जब यह देह मिट्टी हो जाएगी, तब तुझसे देने को कौन कहेगा? अवसर देह के रहते ही है।

156

कबीर यह जग कुछ नहीं, खिन खारा खिन मीठ।
काल्ह जो बैठा भंडपै, आज मसाने दीठ॥

यह संसार कुछ भी नहीं—क्षण में खारा, क्षण में मीठा। जो कल सिंहासन पर बैठा दिखता था, आज श्मशान में दिखाई दे रहा है। सब कुछ क्षणभंगुर है।

161

चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइके, साबित बचा न कोय॥

चलती चक्की देखकर कबीर रो पड़े—दो पाटों के बीच आकर कोई साबुत नहीं बचा। इसी तरह काल के दो पाटों के बीच पिसकर कोई भी बचा नहीं रह पाता।

166

झूठे सुख को सुख कहै, मानता है मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद॥

लोग झूठे सुख को ही सुख कहते हैं और मन उसी में प्रसन्न रहता है। पर यह सारा जगत काल का चबेना है—कुछ उसके मुँह में है और कुछ गोद में रखा है।

172

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यों सारा परभात॥

मनुष्य का जीवन पानी के बुलबुले जैसा है। देखते ही देखते वह मिट जाएगा, जैसे प्रभात होते ही तारे छिप जाते हैं। जीवन अत्यंत क्षणिक है।

174

पत्ता बोला वृक्ष से, सुनो वृक्ष बनराय।
अब के बिछुड़े ना मिले, दूर पड़ेंगे जाय॥

पत्ता वृक्ष से बोला—हे वनराज, सुनो! अब बिछुड़ गए तो फिर मिलना न होगा, बहुत दूर जा पड़ेंगे। यह जीवन के अनिवार्य वियोग का मार्मिक चित्र है।

182

माली आवत देख के, कलियन करी पुकार।
फूल-फूल चुन लिए, काल हमारी बार॥

माली को आते देखकर कलियाँ पुकार उठीं—आज खिले फूल चुन लिए गए, कल हमारी बारी है। काल सबको क्रमशः ले जाता है, कोई बचा नहीं रहता।

190

लकड़ी कहै लुहार की, तू मति जारे मोहि।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारूँगी तोहि॥

लकड़ी लुहार से कहती है—तू मुझे मत जला, एक दिन ऐसा आएगा जब मैं तुझे जलाऊँगी। जो आज दूसरे को कष्ट देता है, कल उसी की बारी आती है।

238

तीरथ करि-करि जग मुवा, डूंधै पाणी न्हाइ।
रामहि राम जपंता, काल घसीटया जाइ॥

तीर्थ कर-करके और गंदे पानी में नहाकर सारा जग मर गया। राम-राम रटते हुए भी काल उन्हें घसीटकर ले जाता है—क्रिया भर से भीतर नहीं बदलता।

284

एक दिन ऐसा होएगा, सब सूँ पड़े बिछोइ।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ॥

एक दिन ऐसा आएगा जब सबसे बिछोह हो जाएगा। हे राजा, राणा, छत्रपति—अभी से सावधान क्यों नहीं हो जाते?

285

कबीर नौबत आपणी, दिन-दस लेहू बजाइ।
ए पुर पाटन, ए गली, बहुरि न देखै आइ॥

अपनी नौबत दस दिन बजा लो। ये नगर, ये कस्बे और ये गलियाँ फिर लौटकर देखने को नहीं मिलेंगी।

323

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चाढ़ि असवार।
ज्ञान खड्ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार॥

प्रेम का घोड़ा है और चेतना उस पर सवार। ज्ञान की तलवार थामकर काल के सिर पर ऐसी मार मचाई कि वह भी हार गया।

328

जीवन थैं मरिबो भलौ, जो मरि जानै कोइ।
मरनै पहली जे मरै, जो कलि अजरावर होइ॥

यदि कोई मरना जान ले तो जीने से मरना भला है। जो मृत्यु से पहले ही अहंकार को मार दे, वह अजर-अमर हो जाता है।

339

बारी-बारी आपणी, चले पियारे म्यंत।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै नित्त॥

एक-एक करके सारे प्यारे मित्र चले गए। हे जीव! तेरी बारी भी नित्य निकट आती जा रही है।

349

सुरति करौ मेरे साइयाँ, हम हैं भोजन माँहि।
आपे ही बहि जाहिंगे, जौ नहिं पकरौ बाँहि॥

हे मेरे स्वामी, मेरी सुध लो—मैं तो काल के भोजन में पड़ा हूँ। यदि तुमने बाँह न पकड़ी तो अपने आप बहा चला जाऊँगा।

482

साधु मिलै यह सब हलै, काल जाल जम चोट।
शीश नवावत ढहि परै, अघ पावन को पोट॥

साधु मिल जाएँ तो काल का जाल और यम की चोट—सब हट जाते हैं। सिर झुकाते ही पापों की गठरी ढहकर गिर जाती है।

531

आज काल के लोग हैं, मिलि कै बिछुरी जाहिं।
लाहा कारण आपने, सौगंध राम कि खाहिं॥

आजकल के लोग मिलते हैं और बिछड़ जाते हैं। अपने लाभ के लिए वे राम की सौगंध तक खा लेते हैं।

664

कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
दिवस चारि का पेखना, विनशि जायगा काल॥

लाखों का महल हो और उसमें हीरे-लाल जड़े हों—यह चार दिन का तमाशा है, काल आते ही सब नष्ट हो जाएगा।

665

कबीर धूल सकेलि के, पुड़ी जो बाँधी येह।
दिवस चार का पेखना, अंत खेह की खेह॥

धूल बटोरकर यह देह रूपी पुड़िया बाँधी गई है। यह चार दिन का तमाशा है—अंत में धूल की धूल ही रह जाएगी।

666

कबीर थोड़ा जीवना, माढ़ै बहुत मढ़ान।
सबही ऊभ पंथ सिर, राव रंक सुल्तान॥

जीवन थोड़ा है और मनुष्य बहुत बड़े-बड़े निर्माण करता जाता है। राजा, रंक और सुल्तान—सब उसी एक मार्ग पर खड़े हैं।

667

कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखहु आय॥

अपनी नौबत दस दिन बजा लो। यह नगर, यह कस्बा और यह गली—फिर लौटकर देखने को नहीं मिलेगी।

669

कबीर जो दिन आज है, सो दिन नहीं काल।
चेति सकै तो चेत ले, मीच परी है ख्याल॥

जो दिन आज है वह कल नहीं रहेगा। यदि चेत सको तो अभी चेत जाओ—मृत्यु तुम पर नजर रखे हुए है।

670

कबीर खेत किसान का, मिरगन खाया झारि।
खेत बिचारा क्या करे, धनी करे नहिं बारि॥

किसान का खेत हिरनों ने चरकर साफ कर दिया। बेचारा खेत क्या करे, जब मालिक ने बाड़ ही नहीं लगाई? असावधानी की हानि अपनी ही होती है।

671

कबीर यह संसार है, जैसा सेमल फूल।
दिन दस के व्यवहार में, झूठे रंग न भूल॥

यह संसार सेमल के फूल जैसा है—देखने में सुंदर, पर भीतर खोखला। दस दिन के इस व्यवहार में झूठे रंग पर मत भूलो।

672

कबीर सपने रैन के, ऊधरी आये नैन।
जीव परा बहू लूट में, जागूँ लेन न देन॥

रात के सपने में आँख खुली तो देखा कि जीव भारी लूट में पड़ा है। जागने पर न कुछ लेना निकला न देना—सब स्वप्नवत् है।

673

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गये सब तार।
जंत्र बिचारा क्याय करे, गया बजावन हार॥

यह वाद्य अब बजता नहीं, इसके सारे तार टूट गए। बेचारा वाद्य क्या करे—बजाने वाला ही चला गया। देह वैसी ही है जब प्राण निकल जाएँ।

674

कबीर रसरी पाँव में, कहँ सोवै सुख-चैन।
साँस नगारा कुँच का, बाजत है दिन-रैन॥

पाँव में काल की रस्सी बँधी है, फिर सुख-चैन की नींद कहाँ? हर साँस कूच का नगाड़ा है जो दिन-रात बजता रहता है।

675

कबीर नाव तो झाँझरी, भरी बिराने भाए।
केवट सो परचै नहीं, क्यों कर उतरे पाए॥

नाव छेदों से भरी है और उस पर पराया बोझ लदा है। केवट यानी गुरु से परिचय भी नहीं—फिर पार कैसे उतरोगे?

676

कबीर पाँच पखेरूआ, राखा पोष लगाय।
एक जु आया पारधी, लइ गया सबै उड़ाय॥

पाँच इंद्रिय रूपी पक्षियों को बड़े जतन से पाला-पोसा। पर एक बहेलिया आया और सबको उड़ा ले गया।

677

कबीर बेड़ा जरजरा, कूड़ा खेनहार।
हरूये-हरूये तरि गये, बूड़े जिन सिर भार॥

नाव जर्जर है और खेने वाला भी निकम्मा। जो हलके थे वे तर गए और जिनके सिर पर बोझ था वे डूब गए।

678

एक दिन ऐसा होयगा, सबसों परै बिछोह।
राजा राना राव एक, सावधान क्यों नहिं होय॥

एक दिन ऐसा आएगा जब सबसे बिछोह हो जाएगा। राजा, राणा और राव—सब एक समान हैं, फिर सावधान क्यों नहीं होते?

680

मरेंगे मरि जायँगे, कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसायेंगे, छेड़ि बसंता गाम॥

मरेंगे और मर जाएँगे, फिर कोई नाम तक नहीं लेगा। बसा हुआ गाँव छोड़कर उजाड़ में जा बसना पड़ेगा।

681

कबीर पानी हौज की, देखत गया बिलाय।
ऐसे ही जीव जायगा, काल जु पहुँचा आय॥

हौज का पानी देखते ही देखते सूख गया। इसी तरह जीव भी चला जाएगा, क्योंकि काल आ पहुँचा है।

682

कबीर गाफिल क्या करे, आया काल नजदीक।
कान पकरि के ले चला, ज्यों अजियाहि खटीक॥

हे लापरवाह, अब क्या करेगा—काल निकट आ गया। वह कान पकड़कर ऐसे ले चला जैसे कसाई बकरी को ले जाता है।

684

हाड़ जरै जस लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास॥

हड्डियाँ लकड़ी की तरह जलती हैं और केश घास की तरह। सारे जगत को यों जलता देखकर कबीर उदास हो गए।

685

आज काल के बीच में, जंगल होगा वास।
ऊपर ऊपर हल फिरै, ढोर चरेंगे घास॥

आज-कल में ही यहाँ जंगल हो जाएगा। इस जगह पर हल चलेगा और मवेशी घास चरेंगे। वैभव के अवशेष भी नहीं बचते।

686

ऊजड़ खेड़े टेकरी, धड़ि धड़ि गये कुम्हार।
रावन जैसा चलि गया, लंका का सरदार॥

उजड़े गाँव की टीलों पर कितने ही कुम्हार घड़े गढ़-गढ़कर चले गए। लंका का सरदार रावण जैसा भी चला गया—कोई नहीं ठहरा।

687

पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज॥

एक पल की भी खबर नहीं और लंबी योजनाएँ बनाता रहता है। काल अचानक ऐसे मारेगा जैसे बाज तीतर को झपट लेता है।

689

आज कहै मैं कल भजूँ, काल फिर काल।
आज काल के करत ही, औसर जासी चाल॥

आज कहता है कल भजन करूँगा, फिर कल और कल। इसी आज-कल में अवसर हाथ से निकल जाएगा।

690

कहा चुनावै मेड़िया, चूना माटी लाय।
मीच सुनेगी पापिनी, दौरि के लेगी आय॥

चूना और मिट्टी लाकर ऊँची अटारियाँ क्यों बनवाता है? पापिन मृत्यु सुन लेगी तो दौड़कर ले जाएगी।

691

सातों शब्द जु बाजते, घर-घर होते राग।
ते मंदिर खाले पड़े, बैठने लागे काग॥

जहाँ सातों स्वर बजते थे और घर-घर संगीत होता था, वे भवन आज खाली पड़े हैं और उन पर कौए बैठने लगे हैं।

692

ऊँचा महल चुनाइया, सुबरदन कली ढुलाय।
वे मंदिर खाले पड़े, रहै मसाना जाय॥

ऊँचे महल बनवाए और सोने के कलश चढ़वाए। आज वे भवन खाली पड़े हैं और बनवाने वाले श्मशान जा पहुँचे।

694

ऊँचा दीसे धौहरा, भागे चीती पोल।
एक गुरु के नाम बिन, जम मरेंगे रोज॥

ऊँचे महल दिखाई देते हैं और चित्रित द्वार शोभा पाते हैं। पर एक गुरु के नाम के बिना मनुष्य रोज मरता रहता है।

695

पाव पलक तो दूर है, मो पै कहा न जाय।
ना जानो क्या होयगा, पाव के चौथे भाय॥

एक पल की बात तो दूर, मुझसे तो कुछ कहा ही नहीं जाता। पता नहीं पल के चौथाई भाग में ही क्या हो जाए।

697

हाड़ जले लकड़ी जले, जले जलवान हार।
अजहुँ झोला बहुत है, घर आवै तब जान॥

हड्डियाँ जलती हैं, लकड़ी जलती है और जलाने वाला भी अंततः जलता है। अभी बहुत झंझट शेष है—घर पहुँचने पर ही मानना।

699

पाँच तत्व का पूतरा, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिर-फिर रोके ठाम॥

पाँच तत्वों का यह पुतला है, जिसका नाम मनुष्य रख दिया गया। चार दिन के लिए वह बार-बार ठिकाने बनाता और रोकता फिरता है।

700

कहा चुनावै मेड़िया, लम्बी भीत उसारि।
घर तो साढ़े तीन हाथ, घना तो पौने चारि॥

लंबी दीवारें उठाकर बड़ी अटारियाँ क्यों बनवाते हो? अंतिम घर तो साढ़े तीन हाथ का है, अधिक से अधिक पौने चार का।

701

यह तन काँचा कुंभ है, लिया फिरै थे साथ।
टपका लागा फुटि गया, कछु न आया हाथ॥

यह शरीर कच्चा घड़ा है जिसे साथ लिए फिरते हो। एक बूँद पड़ी और फूट गया—हाथ कुछ न आया।

702

जनमै मरन विचार के, कूरे काम निवारि।
जिन पंथा तोहि चालना, सोई पंथ सँवारि॥

जन्म और मरण पर विचार करके व्यर्थ के काम छोड़ दो। जिस मार्ग पर तुम्हें चलना है, उसी मार्ग को सँवारो।

704

दुनिया के धोखे मुआ, चला कुटुम की कानि।
तब कुल की क्या लाज है, जब ले धरा मसानि॥

दुनिया के धोखे में और कुटुंब की लाज निभाते-निभाते मर गया। जब श्मशान में ले जाकर रख दिया जाएगा, तब कुल की कौन-सी लाज बचेगी?

708

जंगल ढेरी राख की, उपरि उपरि हरियाय।
ते भी होते मानवी, करते रंग रलियाय॥

जंगल में राख के ढेर पड़े हैं जिन पर ऊपर से हरियाली छा गई है। वे भी कभी मनुष्य थे और रंगरेलियाँ मनाते थे।

710

महलन माही पौढ़ते, परिमल अंग लगाय।
ते सपने दीसे नहीं, देखत गये बिलाय॥

जो महलों में सुगंध लगाकर सोते थे, वे अब सपने में भी दिखाई नहीं देते—देखते ही देखते मिट गए।

711

कुल करनी के कारने, ढिग ही रहिगो राम।
कुल का की लाजि है, जब जम की धूम धाम॥

कुल और लोकाचार के चक्कर में राम पास रहकर भी छूट गए। जब यम की धूमधाम मचेगी, तब कुल की कौन-सी लाज काम आएगी?

713

मैं मेरी तू जानि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैखड़ा, मेरी गल की फाँस॥

'मैं' और 'मेरी' को जानो—यही मूल का नाश करने वाली है। 'मेरी' पैरों की बेड़ी है और गले का फंदा है।

714

ज्यों कोरी रेजा बुनै, नीरा आवै छोर।
ऐसा लेखा मीच का, दौरि सकै तो दौर॥

जैसे जुलाहा कपड़ा बुनता है और छोर पास आता जाता है, वैसा ही मृत्यु का हिसाब है। दौड़ सको तो दौड़ लो।

715

इत पर धर उत है धरा, बनिजन आये हाथ।
करम करीना बेचि के, उठि करि चालो काट॥

यहाँ भी धरा है और वहाँ भी—व्यापार करने आए हो तो सौदा कर लो। कर्म का माल बेचकर सौदा निपटाकर उठ चलो।

716

जिसको रहना उत घरा, सो क्यों जोड़े मित्र।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त॥

जिसे उस लोक में रहना है, वह यहाँ नाता क्यों जोड़े? जैसे पराए घर का मेहमान चित्त उचटाए रहता है, वैसा ही रहना चाहिए।

718

मैं भौंरो तोहि बरजिया, बन बन बास न लेय।
अटकेगा कहुँ बेलि में, तड़फि-तड़फि जिय देय॥

हे भौंरे, मैंने तुझे मना किया था कि वन-वन सुगंध मत ले। कहीं किसी बेल में अटक जाएगा और तड़प-तड़पकर प्राण देगा।

720

तू मति जानै बावरे, मेरा है यह कोय।
प्रान पिंड सो बँधि रहा, सो नहिं अपना होय॥

हे बावले, यह मत समझ कि यहाँ कोई तेरा है। जिस देह से प्राण बँधे हैं, वह भी अपनी नहीं है।

726

काल चक्र चक्की चलै, बहुत दिवस औ रात।
सुगन अगुन दोउ पाटला, तामें जीव पिसात॥

काल की चक्की दिन-रात चलती रहती है। गुण और अवगुण उसके दो पाट हैं, जिनके बीच जीव पिसता रहता है।

727

एक दिन ऐसा होयगा, कोय काहु का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं॥

एक दिन ऐसा आएगा जब कोई किसी का नहीं रहेगा। घर के संबंधों की तो बात ही क्या, देह का साथ भी छूट जाएगा।

731

चले गये सो ना मिले, किसको पूछूँ जात।
मात-पिता-सुत बांधवा, झूठा सब संघात॥

जो चले गए वे फिर नहीं मिले, अब जाकर किससे पूछूँ? माता, पिता, पुत्र और भाई-बंधु—यह सारा साथ झूठा है।

733

हे मतिहीनी माछरी, राखि न सकी शरीर।
सो सरवर सेवा नहीं, जाल काल नहिं कीर॥

हे बुद्धिहीन मछली, तू अपना शरीर न बचा सकी। तूने ऐसे सरोवर की सेवा नहीं की जहाँ न जाल हो, न काल और न बहेलिया।

734

मछरी यह छोड़ी नहीं, धीमर तेरो काल।
जिहि जिहि डाबर धर करो, तहँ तहँ मेले जाल॥

हे मछली, धीवर तेरा काल है और वह तुझे छोड़ेगा नहीं। जिस-जिस गड्ढे में तू ठिकाना बनाएगी, वहीं-वहीं वह जाल डाल देगा।

735

परदा रहती पदुमिनी, करती कुल की कान।
घड़ी जु पहुँची काल की, छोड़ भई मैदान॥

जो सुंदरी परदे में रहती थी और कुल की मर्यादा निभाती थी—काल की घड़ी आते ही सब छोड़कर खुले मैदान में आ पड़ी।

736

जागो लोगों मत सुवो, ना करूँ नींद से प्यार।
जैसा सपना रैन का, ऐसा यह संसार॥

हे लोगो, जागो! सोओ मत और नींद से प्रेम मत करो। यह संसार वैसा ही है जैसा रात का सपना।

738

जिन घर नौबत बाजती, होत छतीसों राग।
सो घर भी खाली पड़े, बैठने लागे काग॥

जिन घरों में नौबत बजती थी और छत्तीसों राग गूँजते थे, वे घर भी आज खाली पड़े हैं और उन पर कौए बैठने लगे हैं।

742

नर नारायन रूप है, तू मति समझे देह।
जो समझै तो समझ ले, खलक पलक में खोह॥

मनुष्य नारायण का ही रूप है, उसे केवल देह मत समझ। समझना हो तो अभी समझ ले—यह संसार पल भर में मिट जाता है।

744

मरूँ-मरूँ सब कोइ कहै, मेरी मरै बलाय।
मरना था तो मरि चुका, अब को मरने जाय॥

सब कहते हैं मैं मरूँगा, मरूँगा। मेरी बला मरे! जो मरना था वह अहंकार तो मर ही चुका—अब मरने कौन जाए?

745 एक बूँद के कारने, रोता सब संसार।
अनेक बूँद खाली गये, तिनका नहीं विचार॥

एक बूँद के लिए सारा संसार रोता है, पर अनेक बूँदें व्यर्थ चली गईं—उनका कोई विचार नहीं करता।

748 मूरख शब्द न मानई, धर्म न सुनै विचार।
सत्य शब्द नहिं खोजई, जावै जम के द्वार॥

मूर्ख शब्द को नहीं मानता, धर्म का विचार नहीं सुनता और सत्य को नहीं खोजता—इसलिए यम के द्वार पर जाता है।

749 चेत सवेरे बाचरे, फिर पाछे पछिताय।
तोको जाना दूर है, कहें कबीर बुझाय॥

सवेरे ही चेत जा और बच जा, नहीं तो बाद में पछताएगा। तुझे बहुत दूर जाना है—कबीर समझाकर कहते हैं।

750 क्यों खोवे नरतन वृथा, परि विषयन के साथ।
पाँच कुल्हाड़ी मारही, मूरख अपने हाथ॥

विषयों के संग पड़कर यह मनुष्य-देह व्यर्थ क्यों खोता है? मूर्ख अपने ही हाथों पाँच विकारों की कुल्हाड़ी अपने ऊपर चला रहा है।

751 आँखि न देखे बावरा, शब्द सुनै नहिं कान।
सिर के केस उज्ज्वल भये, अबहु निपट अजान॥

बावला आँखों से देखता नहीं और कानों से शब्द सुनता नहीं। सिर के बाल सफेद हो गए, फिर भी बिलकुल अनजान बना हुआ है।

752 ज्ञानी होय सो मानही, बूझै शब्द हमार।
कहें कबीर सो बाँचि है, और सकल जमधार॥

जो ज्ञानी होगा वही हमारे शब्द को मानेगा और समझेगा। कबीर कहते हैं—वही बचेगा, बाकी सब यम की धार में जाएँगे।

753 जोबन मिकदारी तजी, चली निशान बजाय।
सिर पर सेत सिरायचा, दिया बुढ़ापै आय॥

यौवन अपनी हद छोड़कर डंका बजाता हुआ चला गया। बुढ़ापे ने आकर सिर पर सफेद चादर ओढ़ा दी।

754 कबीर टुक-टुक चोंगता, पल-पल गयी बिहाय।
जिव जंजाले पड़ि रहा, दियरा दममा आय॥

थोड़ा-थोड़ा करके पल-पल बीतता चला गया। जीव जंजाल में पड़ा रहा और दीपक बुझने का समय आ पहुँचा।

755

काल जीव को ग्रासई, बहुत कह्यो समुझाय।
कहें कबीर मैं क्या करूँ, कोई नहीं पितयाय॥

काल जीव को निगल जाता है—यह बहुत समझाकर कह दिया। कबीर कहते हैं, मैं क्या करूँ, कोई विश्वास ही नहीं करता।

756

निश्चय काल गरासही, बहुत कहा समुझाय।
कहें कबीर मैं का कहूँ, देखत न पितयाय॥

काल निश्चित रूप से ग्रास लेगा—यह बहुत समझाकर कहा। कबीर कहते हैं, मैं और क्या कहूँ—लोग आँखों से देखकर भी विश्वास नहीं करते।

757

जो उगै तो आथवै, फूलै सो कुम्हिलाय।
जो चुने सो ढहि पड़ै, जनमें सो मरि जाय॥

जो उगेगा वह अस्त होगा, जो खिलेगा वह मुरझाएगा। जो चुना जाएगा वह ढहेगा और जो जन्मेगा वह मरेगा।

758

कुशल-कुशल जो पूछता, जग में रहा न कोय।
जरा मुई न भय मुवा, कुशल कहाँ ते होय॥

कुशल-क्षेम पूछने वाला जगत में कोई नहीं रहा। जब बुढ़ापा और भय ही नहीं मरे, तो कुशल कहाँ से होगी?

759

जरा श्वान जोबन ससा, काल अहेरी नित्त।
दो बैरी बिच झोंपड़ा, कुशल कहाँ सो मित्त॥

बुढ़ापा कुत्ता है, यौवन खरगोश और काल नित्य शिकारी। दो शत्रुओं के बीच झोंपड़ा पड़ा है—हे मित्र, कुशल कहाँ से होगी?

760

बिरिया बीती बल घटा, केश पलटि भये और।
बिगरा काज सँभारि ले, करि छूटने की ठौर॥

समय बीत गया, बल घट गया और केश का रंग बदल गया। बिगड़ा काम अभी सँभाल ले और छूटने का ठिकाना बना ले।

761

यह जीव आया दूर ते, जाना है बहु दूर।
बिच के बासे बसि गया, काल रहा सिर पूर॥

यह जीव बहुत दूर से आया है और उसे बहुत दूर जाना है। पर वह बीच के पड़ाव में ही बस गया, जबकि काल सिर पर मँडरा रहा है।

762

कबीर गाफिल क्यों फिरै, क्या सोता घनघोर।
तेरे सिराने जम खड़ा, ज्यों अँधियारे चोर॥

हे लापरवाह, क्यों बेसुध फिरता है और घोर नींद में सोता है? तेरे सिरहाने यम ऐसे खड़ा है जैसे अँधेरे में चोर।

763 कबीर पगरा दूर है, बीच पड़ी है रात।
न जानों क्या होयेगा, ऊगंता परभात॥

मंजिल दूर है और बीच में रात पड़ी है। पता नहीं प्रभात होते-होते क्या हो जाए।

764 कबीर मंदिर आपने, नित उठि करता आल।
मरहट देखी डरपता, चौडढ़े दीया डाल॥

अपने घर में नित्य उठकर नए-नए बहाने बनाता रहा। श्मशान देखकर डर गया, पर फिर भी उसे भुलाकर आगे बढ़ गया।

765 धरती करते एक पग, समुंद्र करते फाल।
हाथों परबत लौलते, ते भी खाये काल॥

जो एक पग में धरती नाप लेते थे, समुद्र लाँघ जाते थे और हाथों से पर्वत उठा लेते थे—काल ने उन्हें भी खा लिया।

766 आस पास जोधा खड़े, सबै बजावै गाल।
मंझ महल से ले चला, ऐसा परबल काल॥

आसपास योद्धा खड़े अपनी बड़ाई हाँकते रहे। पर काल इतना प्रबल है कि महल के बीच से ही उठाकर ले चला।

767 चहुँ दिसि पाका कोट था, मंदिर नगर मझार। खिरकी खिरकी पाहरू, गज बंदा दरबार॥
चहुँ दिसि ठाढ़े सूरमा, हाथ लिये हथियार। सबही यह तन देखता, काल ले गया मात॥

चारों ओर पक्का किला था और नगर के बीच महल। हर खिड़की पर पहरेदार तैनात थे, दरबार में हाथी बँधे थे और चारों ओर हथियारबंद योद्धा खड़े थे। सब देखते ही रह गए और काल इस शरीर को मात देकर ले गया। सुरक्षा का कोई प्रबंध काल को नहीं रोक सकता।

768 हम जाने थे खायेंगे, बहुत जिमि बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकरि ले गया काल॥

हम सोचते थे बहुत भोगेंगे, बहुत भूमि और बहुत धन जमा करेंगे। सब ज्यों का त्यों धरा रह गया और काल पकड़कर ले गया।

769 काची काया मन अथिर, थिर थिर कर्म करंत।
ज्यों-ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों-त्यों काल हसंत॥

काया कच्ची है और मन अस्थिर, फिर भी मनुष्य स्थायी होने के भरोसे कर्म करता जाता है। ज्यों-ज्यों वह निडर होकर फिरता है, त्यों-त्यों काल हँसता है।

771 संसै काल शरीर में, विषम काल है दूर।
जाको कोई जाने नहीं, जारि करै सब धूर॥

संशय रूपी काल शरीर में ही बसा है, विकट काल दूर नहीं। जिसे कोई नहीं जानता, वह जलाकर सब धूल कर देता है।

772 बालपना भोले गया, और जुवा महमंत।
वृद्धपने आलस गयो, चला जरंते अंत॥

बचपन भोलेपन में बीता, यौवन मस्ती और मद में। बुढ़ापा आलस्य में चला गया और अंत में जलते-जलते विदा हो गया।

773 बेटा जाये क्या हुआ, कहा बजावै थाल।
आवन-जावन होय रहा, ज्यों कीड़ी का नाल॥

पुत्र हुआ तो क्या हुआ, थाली क्यों बजाते हो? यह आना-जाना तो चींटियों की कतार की तरह चलता ही रहता है।

774 ताजी छूटा शहर ते, कसबे पड़ी पुकार।
दरवाजा जड़ा ही रहा, निकस गया असवार॥

घोड़ा शहर से छूट गया और कस्बे में हल्ला मच गया। दरवाजा बंद ही रहा और सवार निकल गया—प्राण के जाने को कोई रोक नहीं सकता।

775 खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट न होय॥

संसार में खुलकर खेलो, कोई बाँध नहीं सकेगा। चुंगी वसूलने वाला क्या करेगा, जब सिर पर गठरी ही न हो?

777 संसै काल शरीर में, जारि करै सब धूरि।
काल से बाँचे दास जन, जिन पै ढ्याल हुजूर॥

संशय रूपी काल शरीर में ही है जो सब जलाकर धूल कर देता है। काल से वही भक्त बचते हैं जिन पर स्वामी की ढाल है।

778 ऐसे साँच न मानई, तिलकी देखो जाय।
जारि बारि कोयला करे, जम ते देखा सोय॥

यदि यह सच न लगे तो जाकर देख लो। शरीर को जलाकर कोयला कर दिया जाता है—यम का यह दृश्य सबने देखा है।

779 जारि बारि मिस्सी करे, मिस्सी करि है छार।
कहें कबीर कोइला करै, फिर दै दै औतार॥

जलाकर राख कर दिया जाता है और राख भी अंततः मिट्टी हो जाती है। कबीर कहते हैं—यही क्रम बार-बार अवतार लेकर चलता रहता है।

780 काल पाय जब ऊपजो, काल पाय सब जाय।
काल पाय सब बिनश है, काल काल कहँ खाय॥

समय आने पर सब उपजता है और समय आने पर सब चला जाता है। समय पर ही सब नष्ट होता है—काल ही सबको खा जाता है।

781

पात झरंता देखि के, हँसती कूपलियाँ।
हम चाले तुम चालिहों, धीरी बापलियाँ॥

पत्तों को झड़ता देखकर नई कोंपलें हँसीं। तब पत्तों ने कहा—धीरज रखो बहनो, आज हम चले हैं, कल तुम भी चलोगी।

782

फागुन आवत देखि के, मन झूरे बनराय।
जिन डाली हम केलि, सो ही ब्योरे जाय॥

फागुन आते देखकर वनराजि का मन मुरझा जाता है। जिस डाली पर हमने क्रीड़ा की, वही अब सूनी हुई जा रही है।

783

मूस्या डरपें काल सों, कठिन काल को जोर।
स्वर्ग भूमि पाताल में, जहाँ जाँव तहँ गोर॥

सब काल से डरते हैं, काल का बल बहुत कठोर है। स्वर्ग, भूमि या पाताल—जहाँ भी जाओ, वहीं कब्र तैयार है।

784

सब जग डरपै काल सों, ब्रह्मा, विष्णु महेश।
सुर नर मुनि औ लोक सब, सात रसातल सेस॥

सारा जगत काल से डरता है—ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी। देवता, मनुष्य, मुनि, सब लोक और सातों रसातल तक इसी भय में हैं।

785

कबीरा पगरा दूरि है, आय पहुँची साँझ।
जन-जन को मन राखता, वेश्या रहि गयी बाँझ॥

मंजिल दूर है और साँझ आ पहुँची। जो सबका मन रखने में लगा रहा, उसका जीवन निष्फल ही रह गया।

786

जाय झरोखे सोवता, फूलन सेज बिछाय।
सो अब कहँ दीसै नहीं, छिन में गयो बोलाय॥

जो झरोखे में फूलों की सेज बिछाकर सोता था, वह अब कहीं दिखाई नहीं देता—क्षण भर में बुलावा आ गया।

787

काल फिरे सिर ऊपरै, हाथों धरी कमान।
कहें कबीर गहु ज्ञान को, छोड़ सकल अभिमान॥

काल सिर के ऊपर कमान थामे मँडरा रहा है। कबीर कहते हैं—सारा अभिमान छोड़कर ज्ञान को थाम लो।

788

काल काल सब कोई कहै, काल न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काल कहवै सोय॥

काल-काल सब कहते हैं, पर काल को कोई पहचानता नहीं। मन की जितनी कल्पनाएँ हैं, वही असल में काल है।

789

काल काम तत्काल है, बुरा न कीजै कोय।
भले भलई पेल है, बुरे बुराई होय॥

काल का काम तत्काल होता है, इसलिए किसी का बुरा मत करो। भले के साथ भलाई होती है और बुरे के साथ बुराई।

790

काल काम तत्काल है, बुरा न कीजै कोय।
अनबोवे लुनता नहीं, बोवे लुनता होय॥

काल तत्काल फल देता है, इसलिए किसी का बुरा मत करो। बिना बोए कुछ नहीं काटा जाता—जो बोओगे वही काटोगे।

अहंकार और गर्व

32 दोहे

2

तिनका कबहुँ ना निंदिये, जो पाँव तले होय।
कबहुँ उड़ आँखों पड़े, पीर घनेरी होय॥

पाँव के नीचे पड़े छोटे-से तिनके को भी तुच्छ समझकर उसका अपमान मत करो। वही तिनका यदि कभी उड़कर आँख में पड़ जाए तो असहनीय पीड़ा देता है। किसी को छोटा मानकर तिरस्कार करना उचित नहीं।

18

माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूँगी तोय॥

मिट्टी कुम्हार से कहती है—आज तू मुझे रौंद रहा है, पर एक दिन ऐसा आएगा जब मैं तुझे अपने भीतर समेट लूँगी। अहंकार व्यर्थ है; अंत में सबको इसी माटी में मिलना है।

26

जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहाँ संशय तहाँ रोग।
कह कबीर यह क्यों मिटे, चारों धीरज रोग॥

जहाँ अहंकार है वहाँ विपत्ति है, और जहाँ संदेह है वहाँ रोग। कबीर कहते हैं—ये विकार तभी मिटते हैं जब मन में धैर्य आ जाए। अहं और संशय ही मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं।

37

जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।
यह आपा तो डाल दे, दया करे सब कोय॥

यदि मन शांत हो तो संसार में कोई शत्रु नहीं रह जाता। बस अपना अहंकार छोड़ दो, फिर सब तुम पर स्नेह और दया करने लगेंगे। बैर बाहर नहीं, भीतर के अहं में है।

40

अवगुन कहूँ शराब का, आपा अहमक होय।
मानुष से पशुआ भया, दाम गाँठ से खोय॥

शराब के अवगुण गिनाऊँ तो पहला यही कि वह मनुष्य को मूर्ख और अहंकारी बना देती है। वह आदमी को पशु बना देती है और गाँठ का धन भी गँवा देती है।

44

पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारो कोटि सरूप॥

पतिव्रता स्त्री यदि मैली, काली या कुरूप भी हो तो भी श्रेष्ठ है। उसके शील-सौंदर्य पर करोड़ों रूपवती स्त्रियाँ न्योछावर हैं। बाहरी सुंदरता से चरित्र बड़ा है।

82

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥

जब तक 'मैं' यानी अहंकार था, तब तक गुरु नहीं मिले; अब गुरु हैं तो 'मैं' नहीं रहा। प्रेम की गली इतनी सँकरी है कि उसमें दो नहीं समा सकते—अहं और प्रेम साथ नहीं रह सकते।

86

ऊँचे पानी न टिके, नीचे ही ठहराय।
नीचा हो सो भरिए पिए, ऊँचा प्यासा जाय॥

पानी ऊँचाई पर नहीं ठहरता, वह नीचे ही जमा होता है। जो विनम्र होकर झुकता है वह भरकर पीता है, और अहंकार में ऊँचा बना रहने वाला प्यासा ही लौट जाता है।

87

सब ते लघुताई भली, लघुता ते सब होय।
जैसे दूज का चंद्रमा, शीश नवे सब कोय॥

सबसे अच्छी बात है छोटा बने रहना—लघुता से ही सब कुछ सिद्ध होता है। जैसे दूज के पतले चंद्रमा को सब सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं, पूर्णिमा के चाँद को नहीं।

119

एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार।
है जैसा तैसा हो रहे, रहें कबीर विचार॥

उसे 'एक' कहूँ तो वह वैसा है नहीं, और 'दो' कहूँ तो यह उसका अपमान होगा। वह जैसा है वैसा ही रहने दो—कबीर विचार कर यही कहते हैं। परम तत्त्व शब्दों से परे है।

140

कबीरा गरब न कीजिए, कबहूँ न हँसिये कोय।
अजहूँ नाव समुद्र में, ना जाने का होय॥

अभिमान मत करो और किसी की हँसी मत उड़ाओ। तुम्हारी नाव अभी समुद्र के बीच में है, न जाने आगे क्या हो। दूसरे की दुर्दशा पर हँसने वाला अपनी बारी भूल जाता है।

177

बड़ा हुआ सो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पँछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

बड़ा होने से क्या लाभ, यदि खजूर के पेड़ जैसा हो—जो न पक्षी को छाया देता है और जिसके फल इतने ऊँचे लगते हैं कि किसी के काम नहीं आते। बड़प्पन उपयोगिता से है।

200

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तू॥

'तू-तू' करते-करते मैं स्वयं तू ही हो गया, मुझमें 'मैं' बची ही नहीं। अब जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है। यह अहं के विसर्जन की चरम अवस्था है।

249

कबीर जग की जो कहै, भौ जलि बूड़ै दास।
पारब्रह्म पति छाँड़ि करि, करै मानि की आस॥

जो संसार की वाहवाही की परवाह करता है, वह भवसागर में डूब जाता है। परब्रह्म रूपी स्वामी को छोड़कर वह मान-सम्मान की आशा में लगा रहता है।

253

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तुंड।
जाने-बूझै कुछ नहीं, यों ही अंधा रुंड॥

मुँह ऊँचा करके जोर-जोर से कीर्तन करता दिखाई देता है, पर जानता-समझता कुछ नहीं। ऐसा व्यक्ति बिना सिर के अंधे धड़ के समान है।

288

कबीर कहा गरबियौ, काल कहै कर केस।
ना जाणै कहाँ मारिसी, कै धरि के परदेस॥

अभिमान क्यों करते हो? काल तो केश पकड़े खड़ा है। पता नहीं वह कहाँ मार डाले—घर में या परदेस में।

291

मैं-मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसौ भाजि।
कब लग राखौ हे सखी, रूई लपेटी आगि॥

यह 'मैं-मैं' बड़ी विपत्ति है, हो सके तो इससे भाग निकलो। हे सखी, रूई में लपेटी आग को कब तक सँभालकर रखोगी? अहंकार अंततः सब जला देता है।

327

आपा भेटियाँ हरि मिलै, हरि मेल्या सब जाइ।
अकथ कहाणी प्रेम की, कह्या न कोउ पत्याइ॥

अहंकार का त्याग करने पर हरि मिलते हैं और हरि मिल जाएँ तो सब कुछ मिल जाता है। प्रेम की यह कहानी अकथनीय है—कहने पर कोई विश्वास ही नहीं करता।

330

रोड़ा है रहो बाट का, तजि पाषंड अभिमान।
ऐसा जे जन है रहै, ताहि मिलै भगवान॥

पाखंड और अभिमान छोड़कर रास्ते के पत्थर जैसा हो जा। जो व्यक्ति ऐसा हो जाता है, उसे भगवान मिल जाते हैं।

537

मान नहीं अपमान नहीं, ऐसे शीतल संत।
भव सागर से पार हैं, तोरे जम के दंत॥

जिन्हें न मान छूता है न अपमान—ऐसे शीतल संत भवसागर से पार हैं और उन्होंने यम के दाँत तोड़ दिए हैं।

620

ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू सो हेत।
सत्यवार परमारथी, आदर भाव सहेत॥

ज्ञानी अभिमानी नहीं होता, वह सबसे प्रेम रखता है। वह सत्यनिष्ठ, परोपकारी और आदर-भाव से युक्त होता है।

660

कबीर गर्ब न कीजिये, चाम लपेटी हाड़।
हयबर ऊपर छत्रवट, तो भी देवें गाड़॥

इस चमड़े में लिपटी हड्डियों पर अभिमान मत करो। चाहे घोड़े पर छत्र लगाकर चलो, अंत में सब इसी मिट्टी में गाड़ दिए जाओगे।

661

कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देखि अवास।
काल परों भुइं लेटना, ऊपर जमसी घास॥

ऊँचे भवन देखकर गर्व मत करो। कल भूमि पर ही लेटना है और ऊपर घास उग आएगी।

662

कबीर गर्ब न कीजिये, इस जीवन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास॥

इस जीवन की आशा पर अभिमान मत करो। पलाश दस दिन फूला और फिर सूखकर ठूँठ हो गया—जीवन का वैभव भी उतना ही क्षणिक है।

663

कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानो कित मारि हैं, कसा घर क्या परदेस॥

अभिमान मत करो, काल तो केश पकड़े खड़ा है। पता नहीं वह कहाँ मार डाले—घर में या परदेस में।

668

कबीर गर्ब न कीजिये, जाम लपेटी हाड़।
इस दिन तेरा छत्र सिर, देगा काल उखाड़॥

चमड़े में लिपटी हड्डियों पर गर्व मत करो। एक दिन काल तेरे सिर का छत्र भी उखाड़ फेंकेगा।

698

पकी हुई खेती देखि के, गरब किया किसान।
अजहुँ झोला बहुत है, घर आवै तब जान॥

पकी खेती देखकर किसान ने गर्व कर लिया। पर अभी बहुत जोखिम शेष है—अनाज घर आ जाए तभी अपना मानना चाहिए।

709

मलमल खासा पहिनते, खाते नागर पान।
टेढ़ा होकर चलते, करते बहुत गुमान॥

जो मलमल और बढ़िया वस्त्र पहनते थे, नागर पान खाते थे, अकड़कर चलते थे और बहुत घमंड करते थे—वे भी नहीं रहे।

741

अहिरन की चोरी करै, करै सुई का दान।
ऊँचा चढ़ि कर देखता, केतिक दुरि विमान॥

निहाई जितनी बड़ी चोरी करता है और सुई जितना दान। फिर ऊँचे चढ़कर देखता है कि स्वर्ग का विमान कितनी दूर है।

746

समुझाये समुझे नहीं, धरे बहुत अभिमान।
गुरु का शब्द उछेद है, कहत सकल हम जान॥

समझाने पर भी नहीं समझता और बहुत अभिमान धारण किए रहता है। गुरु के शब्द की काट करता है और कहता है कि हम सब जानते हैं।

747

राज पाट धन पायके, क्यों करता अभिमान।
पड़ोसी की जो दशा, भई सो अपनी जान॥

राज्य, पद और धन पाकर अभिमान क्यों करता है? पड़ोसी की जो दशा हुई, वही अपनी भी समझ ले।

770

हाथी परबत फाड़ते, समुंदर छूट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, का कोई गरब कराय॥

जो हाथी और पर्वत तक चीर देते थे और समुद्र भर देते थे, वे मुनिवर भी धरती में गल गए। फिर कोई किस बात का गर्व करे?

प्रेम और विरह

23 दोहे

38

मैं रोऊँ जब जगत को, मोको रोवे न कोय।
मोको रोवे सोई जन, जो शब्द बोध का होय॥

मैं संसार की दशा देखकर रोता हूँ, पर मेरे लिए कोई नहीं रोता। मेरे लिए वही रोएगा जिसे शब्द और ज्ञान का बोध होगा। सच्ची पीड़ा को केवल ज्ञानी ही पहचानता है।

59

लगी लगन छूटे नाहिं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय॥

एक बार सच्ची लगन लग जाए तो वह छूटती नहीं, चाहे जीभ और चोंच जल जाए। अंगारे में कौन-सी मिठास है जो चकोर उसे चबाता है? प्रेम तर्क से परे है।

64

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा-प्रजा जोहि रुचे, शीश देई ले जाय॥

प्रेम न किसी बगीचे में उगता है और न बाजार में बिकता है। राजा हो या प्रजा—जिसे चाहिए, वह अपना शीश देकर ही ले जा सकता है। प्रेम का मूल्य समर्पण है।

65

प्रेम प्याला जो पिये, शीश दक्षिणा देय।
लोभी शीश न दे सके, नाम प्रेम का लेय॥

जो प्रेम का प्याला पीता है, वह अपना सिर दक्षिणा में दे देता है। लोभी व्यक्ति सिर नहीं दे सकता, वह केवल प्रेम का नाम भर लेता है। कथनी और करनी का यही अंतर है।

83

छिन ही चढ़े छिन ही उतरे, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजरे बसे, प्रेम कहावे सोय॥

जो क्षण भर में चढ़ जाए और क्षण भर में उतर जाए, वह प्रेम नहीं। जो कभी घटे नहीं और हृदय रूपी पिंजरे में स्थायी रूप से बसा रहे, वही सच्चा प्रेम कहलाता है।

106

आग जो लागी समुद्र में, धुआँ न प्रकट होय।
सो जाने जो जरमुआ, जाकी लाई होय॥

समुद्र में लगी आग का धुआँ बाहर दिखाई नहीं देता। उस विरह की जलन को वही जानता है जो स्वयं उसमें जल चुका है। भीतर की पीड़ा बाहर से नहीं दिखती।

163

जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान समान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिन प्रान॥

जिस हृदय में प्रेम का संचार नहीं, उसे श्मशान के समान समझो। वह लोहार की धौंकनी की तरह है—साँस तो लेती है, पर उसमें प्राण नहीं होते।

183

ये तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुइँ धरे, तब बैठें घर माँहि॥

यह प्रेम का घर है, मौसी का घर नहीं कि सहज ही चले आओ। यहाँ तो सिर उतारकर भूमि पर रखना पड़ता है, तभी भीतर बैठने को मिलता है। प्रेम पूर्ण समर्पण माँगता है।

189

साँझ पड़े दिन बीतबै, चकवी दीन्ही रोय।
चल चकवा वा देश को, जहाँ रैन नहिं होय॥

साँझ होते ही दिन बीत गया और चकवी विरह में रो पड़ी। वह कहती है—हे चकवा, चलो उस देश को जहाँ रात होती ही नहीं। जीव उस अखंड प्रकाश के लोक को तरसता है।

202

कबीरा प्रेम न चषिया, चषि न लिया साव।
सूने घर का पाहुणा, ज्यूँ आया त्यूँ जाव॥

जिसने प्रेम का स्वाद नहीं चखा और उसका रस नहीं लिया, वह सूने घर के अतिथि जैसा है—जैसे आया था वैसे ही खाली लौट जाता है।

205

बिरह-भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम-बियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होइ॥

विरह रूपी साँप शरीर में बस गया है, जिस पर कोई मंत्र काम नहीं करता। राम का वियोगी जीवित नहीं रह पाता, और यदि जीवित रहे तो बावला हो जाता है।

210

सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साईं के चित्त॥

यह शरीर रबाब है और सारी नसें उसके तार—विरह उन्हें नित्य बजाता रहता है। इस संगीत को और कोई नहीं सुन सकता, केवल स्वामी का मन ही सुनता है।

211

जो रोऊँ तो बल घटै, हँसों तो राम रिसाइ।
मन ही माँहि बिसूरणा, ज्यूँ घुँण काठहि खाइ॥

रोऊँ तो शक्ति क्षीण होती है और हँसूँ तो राम अप्रसन्न होते हैं। इसलिए मन ही मन घुटता रहता हूँ, जैसे घुन भीतर ही भीतर लकड़ी को खा जाता है।

212

कबीर हँसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौ चित्त।
बिन रोयां क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त॥

हँसी-ठिठोली छोड़ो और मन को रोने की ओर लगाओ। बिना विरह में रोए वह प्रेम का प्यारा मित्र कैसे मिलेगा? आँसू भक्ति की सच्ची कसौटी हैं।

214

परबति परबति मैं फिरया, नैन गंवाए रोइ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जा ते जीवनि होइ॥

पर्वत-पर्वत भटकता फिरा और रो-रोकर आँखें गँवा दीं, पर वह संजीवनी बूटी नहीं मिली जिससे जीवन मिलता है। बाहर खोजने से वह तत्त्व नहीं मिलता।

217

जा कारणि मैं ढूँढ़ती, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकों पाइ॥

जिसे ढूँढ़ती फिरती थी, वह सामने आ मिला। पर मैं (जीवात्मा) मैली हूँ और प्रियतम उज्ज्वल—इसलिए उसके चरणों में लग भी नहीं पा रही। पात्रता के बिना मिलन अधूरा है।

244

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आई।
सिर सोंपे सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाई॥

प्रेम की मधुशाला में बहुत लोग आकर बैठ जाते हैं, पर पीता वही है जो अपना सिर सौंप दे। समर्पण के बिना यह रस पिया नहीं जा सकता।

259

प्रेम-प्रीति का चालना, पहिरि कबीरा नाच।
तन-मन ता पर वारहुँ, जो कोइ बोलौ साँच॥

प्रेम और प्रीति का वस्त्र पहनकर कबीर नाच उठता है। जो कोई सच बोले, उस पर मैं तन-मन न्योछावर कर दूँ।

304

राम वियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्हे कोई।
तंबोली के पान ज्यूँ, दिन-दिन पीला होई॥

राम के वियोग में शरीर व्याकुल रहता है, पर इसे कोई पहचान नहीं पाता। वह तंबोली के पान की तरह दिन-प्रतिदिन पीला पड़ता जाता है।

317

मानि महतम प्रेम-रस, गरवातण गुण नेह।
ए सबही अहला गया, जबही कह्या कुछ देह॥

मान, महत्ता, प्रेम-रस, गौरव, गुण और स्नेह—ये सब उसी क्षण नष्ट हो गए जब मुँह से 'कुछ दो' कह दिया। याचना सारी गरिमा हर लेती है।

342

गोव्यंद के गुण बहुत हैं, लिखै जु हिरदै माहिं।
डरता पाणी जा पीऊँ, मति वै धोये जाहिं॥

गोविंद के अनेक गुण हृदय पर लिखे हैं। मैं पानी पीने भी डरते हुए जाता हूँ कि कहीं वे धुल न जाएँ। यह प्रेम की अत्यंत कोमल अभिव्यक्ति है।

706

यह तन काँचा कुंभ है, यहीं लिया रहिवास।
कबीरा नैन निहारिया, नाहिं जीवन की आस॥

यह शरीर कच्चा घड़ा है और इसी में निवास बना लिया। कबीर ने आँखों से देख लिया—जीवन की कोई आशा नहीं।

725

भय बिन भाव न ऊपजै, भय बिन होय न प्रीति।
जब हिरदै से भय गया, मिटी सकल रस रीति॥

भय के बिना भाव नहीं उपजता और प्रीति नहीं होती। जब हृदय से भय चला जाता है, तब सारी रस-रीति ही मिट जाती है।

वाणी और व्यवहार

12 दोहे

21

जो तोकू काँटा बुवे, ताहि बोय तू फूल।
तोकू फूल के फूल है, वाकू है त्रिशूल॥

जो तुम्हारे लिए काँटे बोए, तुम उसके लिए फूल बोओ। तुम्हें फूल के बदले फूल ही मिलेंगे, जबकि उसके हिस्से त्रिशूल-सी पीड़ा आएगी। बुराई का उत्तर भलाई से देना ही श्रेष्ठ है।

30

गारी ही सों ऊपजे, कलह कष्ट और मींच।
हारि चले सो साधु है, लागि चले सो नींच॥

गाली-गलौज से ही झगड़ा, कष्ट और मृत्यु तक उपज जाती है। जो विवाद में हार मानकर हट जाए वह साधु है, और जो उलझने चला जाए वह नीच है।

34

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय॥

ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिसमें अहंकार न हो। ऐसे वचन दूसरों को शांति देते हैं और बोलने वाले का मन भी शीतल कर देते हैं। मधुर वाणी दोनों ओर सुख देती है।

36

कुटिल वचन सबसे बुरा, जारि कर तन हार।
साधु वचन जल रूप है, बरसे अमृत धार॥

कठोर और कुटिल वचन सबसे बुरे हैं—वे शरीर और मन को जलाकर राख कर देते हैं। संत के वचन जल के समान हैं, जो अमृत की धारा बनकर बरसते हैं और शीतलता देते हैं।

48

जाके जिह्वा बंधन नहीं, हृदय में नहीं साँच।
वाके संग न लागिये, खाले वटिया काँच॥

जिसकी जीभ पर कोई संयम नहीं और हृदय में सच्चाई नहीं, उसका साथ मत करो। ऐसे व्यक्ति का संग काँच चबाने जैसा है—भीतर से घायल कर देता है।

77

बानी से पहचानिये, साम चोर की घात।
अंदर की करनी से सब, निकले मुँह की बात॥

मनुष्य की पहचान उसकी वाणी से होती है—सज्जन की भी और चोर की भी। भीतर जो करनी और भाव होते हैं, वे ही मुख से बाहर निकल आते हैं। वाणी भीतर का दर्पण है।

136

आवत गारी एक है, उलटन होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक॥

आती हुई गाली एक होती है, पर उसका उत्तर देने पर वह अनेक हो जाती है। कबीर कहते हैं—पलटकर मत बोलो, तब वह एक की एक ही रह जाएगी और वहीं शांत हो जाएगी।

153

कागा काको धन हरे, कोयल काको देय।
मीठे शब्द सुनाय के, जग अपनो कर लेय॥

कौआ किसी का धन नहीं छीनता और कोयल किसी को कुछ देती नहीं। फिर भी कोयल मीठे बोल से सारा जग अपना बना लेती है। वाणी की मिठास ही लोगों को जोड़ती है।

270

जेता मीठा बोलणा, तेता साधन जारिंग।
पहली था दिखाइ करि, उडै देसी आरिंग॥

जो जितना मीठा बोलता है, उतना ही साधना को जला भी सकता है। पहले लुभावना दिखाकर फिर धोखा दे जाता है। अति मधुर वचन में छल छिपा हो सकता है।

351

सब काहू का लीजिये, साचाँ सबद निहार।
पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर विचार॥

सच्चा वचन जहाँ से भी मिले, सबसे ग्रहण कर लो। पक्षपात मत करो—कबीर विचार कर यही कहते हैं। सत्य किसी एक की बपौती नहीं।

443

साकट का मुख बिंब है, निकसत बचन भुवंग।
ताकि औषध मौन है, विष नहिं व्यापै अंग॥

नास्तिक का मुख बिल है जिससे साँप जैसे वचन निकलते हैं। इसकी औषधि मौन है—चुप रहने से उसका विष शरीर पर नहीं चढ़ता।

730

खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकवाद।
बाँझ हिलावै पालना, तामें कौन सवाद॥

सारी दुनिया से मिल लिया पर हाथ खाली रहा, बस बहुत बकवास की। बाँझ स्त्री पालना झुलाए तो उसमें क्या स्वाद?

ज्ञान और विवेक

27 दोहे

10

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

संत की जाति मत पूछो, उसका ज्ञान परखो। जैसे तलवार खरीदते समय उसकी धार का मोल लगाया जाता है, म्यान का नहीं—वैसे ही मनुष्य का मूल्य उसके गुणों से है, कुल या जाति से नहीं।

35

हीरा वहाँ न खोलिये, जहाँ कुंजड़ों की हाट।
बाँधो चुप की पोटरी, लागहु अपनी बाट॥

जहाँ साग-सब्जी बेचने वालों का बाजार हो वहाँ हीरे की गठरी मत खोलो। वहाँ चुप्पी की पोटली बाँधकर अपने रास्ते चल दो। ज्ञान अपात्र के सामने प्रकट करना व्यर्थ है।

53

कहना सो कह दिया, अब कुछ कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय॥

जो कहना था कह दिया, अब कुछ कहने को शेष नहीं। द्वैत मिट गया, केवल एक बचा—जैसे लहर दरिया में समा जाती है। यह अद्वैत-अनुभव की चरम अवस्था है।

54

वस्तु है ग्राहक नहीं, वस्तु सागर अनमोल।
बिना करम का मानव, फिरै डावाडोल॥

अनमोल वस्तु सागर की तरह भरी पड़ी है, पर उसका कोई ग्राहक नहीं। भाग्यहीन और कर्महीन मनुष्य यूँ ही डाँवाडोल भटकता फिरता है। मूल्य वस्तु का नहीं, पारखी का अभाव है।

55

कलि खोटा जग आँधरा, शब्द न माने कोय।
चाहे कहूँ सत आइना, सो जग बैरी होय॥

कलियुग खोटा है और संसार अंधा—कोई सच्चे उपदेश को नहीं मानता। जो दर्पण की तरह सच दिखा दे, संसार उसी को अपना शत्रु बना लेता है।

70

जा कारण जग ढूँढ़िया, सो तो घट ही माँहि।
परदा दिया भरम का, ताते सूझे नाहिं॥

जिसे पाने के लिए सारा संसार छान मारा, वह तो अपने ही हृदय में है। बीच में भ्रम का परदा पड़ा है, इसीलिए वह दिखाई नहीं देता।

80

दाया भाव हृदय नहीं, ज्ञान थके बेहद।
ते नर नरक ही जायेंगे, सुनि-सुनि साखी शब्द॥

जिनके हृदय में दया का भाव नहीं, उनका असीम ज्ञान भी थक कर व्यर्थ हो जाता है। ऐसे लोग साखी और उपदेश सुनते रहने पर भी नरक ही जाएँगे। दया के बिना ज्ञान निष्फल है।

99

जहँ ग्राहक तहँ मैं नहीं, जहाँ मैं ग्राहक नाहिं।
मूरख यह भरमत फिरे, पकड़ शब्द की छाँय॥

जहाँ ग्राहक है वहाँ मैं नहीं पहुँचता, और जहाँ मैं हूँ वहाँ कोई ग्राहक नहीं। मूर्ख लोग शब्द की छाया भर पकड़कर भटकते फिरते हैं, तत्त्व तक नहीं पहुँचते।

101

तब लग तारा जगमगे, जब लग उगे न सूर।
तब लग जीव जग कर्मवश, ज्यों लग ज्ञान न पूर॥

जब तक सूर्य नहीं उगता तभी तक तारे टिमटिमाते हैं। इसी तरह जब तक पूर्ण ज्ञान का उदय नहीं होता, तब तक जीव कर्मों के बंधन में बँधा संसार में भटकता रहता है।

112

जो जन भीगे रामरस, बिगत कबहूँ ना रूख।
अनुभव भाव न दरसते, ना दुःख ना सुख॥

जो व्यक्ति राम-रस में भीग गया, वह कभी सूखता नहीं। उसका अनुभव बाहर से दिखाई नहीं देता; उस अवस्था में न दुःख रहता है, न सुख—वह दोनों से परे हो जाता है।

115

जहर की जमीं में है रोपा, अभी सींचे सौ बार।
कबीरा खलक न तजे, जामें कौन विचार॥

जो पौधा विष की भूमि में रोपा गया हो, उसे सौ बार सींचने पर भी अमृत नहीं देगा। कबीर कहते हैं—फिर भी संसार अपनी कुप्रवृत्ति नहीं छोड़ता, इसमें भला कौन-सा विवेक है?

124

लीक पुरानी को तजें, कायर कुटिल कपूत।
लीक पुरानी पर रहें, शातिर सिंह सपूत॥

पुरानी और परखी हुई राह को कायर, कुटिल और कुपुत्र ही छोड़ते हैं। बुद्धिमान, सिंह-सा साहसी और सुपुत्र उसी मर्यादा पर टिके रहते हैं।

132

एक ते अनंत अंत एक हो जाय।
एक से परचे भया, एक मोह समाय॥

एक से ही अनंत विस्तार हुआ और अंत में सब उसी एक में लौट जाता है। जिसका उस एक से परिचय हो गया, वह उसी एक में समा जाता है।

151

कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूँढ़े बन माँहि।
ऐसे घट-घट राम है, दुनिया देखे नाहिं॥

कस्तूरी हिरन की अपनी ही नाभि में बसी है, पर वह उसे सारे वन में ढूँढ़ता फिरता है। इसी तरह राम हर हृदय में हैं, पर दुनिया उन्हें देख नहीं पाती।

160

घी के तो दर्शन भले, खाना भला न तेल।
दाना तो दुश्मन भला, मूरख का क्या मेल॥

घी के दर्शन भी भले हैं, पर तेल खाना भी अच्छा नहीं। समझदार शत्रु भी भला है, पर मूर्ख से कैसा मेल? विवेकहीन का साथ सबसे हानिकारक है।

171

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥

पोथियाँ पढ़-पढ़कर सारा संसार मर गया, पर कोई पंडित न बन सका। प्रेम के ढाई अक्षर जो पढ़ ले, वही सच्चा पंडित है। ग्रंथों से नहीं, प्रेम से ज्ञान आता है।

192

ज्ञान रतन का जतन कर, माटी का संसार।
आय कबीर फिर गया, फीका है संसार॥

ज्ञान रूपी रत्न को सँभालकर रखो, यह संसार तो माटी का है। कबीर आए और लौट गए—उन्हें यह संसार नीरस ही लगा।

239

चतुराई सूवै पढ़ी, सोइ पंजर माहिं।
फिरि प्रमोधै आन कों, आपण समझे नाहिं॥

तोते ने चतुराई की बातें रट लीं, पर वह स्वयं पिंजरे में ही बंद है। वह दूसरों को उपदेश देता है, पर अपनी दशा नहीं समझता। रटा हुआ ज्ञान मुक्त नहीं करता।

346

नीर पियावत क्या फिरै, सायर घर-घर बारि।
जो तृषावंत होइगा, सो पीवेगा झखमारि॥

पानी पिलाते क्यों फिरते हो, घर-घर में तो सागर भरा है। जो सचमुच प्यासा होगा, वह स्वयं ढूँढ़कर पी लेगा। ज्ञान थोपा नहीं जाता।

348

हीरा परा बजार में, रहा छार लिपटाइ।
बहुतक मूरख चलि गये, पारिख लिया उठाइ॥

हीरा बाजार में धूल से लिपटा पड़ा रहा। बहुत-से मूर्ख उसे लाँघकर चले गए, पर पारखी ने पहचानकर उठा लिया। योग्यता पहचानने वाला विरला होता है।

372

पंडित पढ़ि गुनि पचि मुये, गुरु बिना मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त शब्द परनाम॥

पंडित पढ़-पढ़कर और गुनकर खप गए, पर गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिला। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं—इसलिए सत्य शब्द को प्रणाम है।

439

कबीर हृदय कठोर के, शब्द न लागे सार।
सुधि-सुधि के हिरदे विधे, उपजै ज्ञान विचार॥

कठोर हृदय वाले को शब्द का सार नहीं लगता। पर जो सुधि वाले हैं, उनका हृदय बिंध जाता है और उसमें ज्ञान-विचार उपज आता है।

509

साधू-साधू सबही बड़े, अपनी-अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, ते माथे के मौर॥

सभी साधु अपने-अपने स्थान पर बड़े हैं। पर जो शब्द का विवेकी और पारखी है, वह सबके माथे का मुकुट है।

513

साधु ऐसा चाहिए, जाके ज्ञान विवेक।
बाहर मिलते सों मिलें, अंतर सबसों एक॥

साधु ऐसा चाहिए जिसमें ज्ञान और विवेक हो। बाहर से वह जो मिले उससे मिलता है, पर भीतर से सबके साथ एक ही रहता है।

556

शब्द विचारे पथ चलै, ज्ञान गली दे पाँव।
क्या रमता क्या बैठता, क्या गृह कंदला छाँव॥

जो शब्द का विचार करके मार्ग पर चले और ज्ञान की गली में पाँव रखे—उसके लिए घूमना या बैठना, घर या वन की छाया, सब बराबर है।

798

हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डार।
श्वान रूप संसार है, भकन दे झक मार॥

ज्ञान के हाथी पर सहज का गलीचा डालकर सवार हो जाओ। संसार कुत्ते के समान है—उसे भौंकने दो, वह अपने आप थक जाएगा।

804

जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
मैं बपुरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ॥

जो गहरे पानी में उतरे, उन्होंने ही मोती पाया। कबीर कहते हैं—मैं डूबने के डर से किनारे ही बैठा रहा, इसलिए खाली रह गया। बिना गहराई में उतरे कुछ नहीं मिलता।

दया और परोपकार

13 दोहे

11

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ पाप है, जहाँ क्षमा तहाँ आप॥

जहाँ दया है वहीं धर्म बसता है और जहाँ लोभ है वहाँ पाप। क्रोध पाप को जन्म देता है, जबकि क्षमा में स्वयं परमात्मा का वास है। मनुष्य के भाव ही उसके धर्म-अधर्म को तय करते हैं।

31

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की हाय से, लोहा भस्म हो जाय॥

कमजोर को कभी मत सताओ, उसकी आह बहुत भारी होती है। जैसे धौंकनी की निर्जीव फूँक से लोहा तक भस्म हो जाता है, वैसे ही निर्बल की आह विनाश कर देती है।

32

दान दिए धन ना घटे, नदी न घटे नीर।
अपनी आँखों देख लो, यों क्या कहे कबीर॥

दान देने से धन कम नहीं होता, जैसे बहने से नदी का जल नहीं घटता। कबीर कहते हैं—यह बात केवल सुनो मत, अपनी आँखों से परख लो। देने से ही बढ़ोतरी होती है।

81

दाया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय।
साईं के सब जीव है, कीरी कुंजर दोय॥

किस पर दया करें और किस पर निर्दय हों? चींटी हो या हाथी—सभी जीव उसी एक स्वामी के हैं। इसलिए दया में भेदभाव नहीं, सब पर समान करुणा होनी चाहिए।

126

भूखा-भूखा क्या करे, क्या सुनावे लोग।
भाँडा घड़ निज मुख दिया, सोई पूर्ण जोग॥

भूखा-भूखा कहकर लोगों को क्या सुनाते फिरते हो? जिसने यह देह रूपी पात्र गढ़ा और मुख दिया, वही भरने का प्रबंध भी करेगा। यही पूर्ण योग है—भरोसा।

194

क्षमा बड़ेन को उचित है, छोटे को उत्पात।
कहा विष्णु का घटि गया, जो भृगु मारी लात॥

क्षमा करना बड़ों को शोभा देता है और उपद्रव करना छोटों का स्वभाव है। भृगु ऋषि ने लात मार दी तो विष्णु का क्या घट गया? बड़प्पन सहन करने में है।

312

दुखिया भूखा दुख कों, सुखिया सुख कों झूरि।
सदा अजंदी राम के, जिनि सुख-दुख गेल्हे दूरि॥

दुखी व्यक्ति दुःख में भूखा रहता है और सुखी सुख के लिए तरसता है। सदा आनंद में तो वे राम के जन हैं जिन्होंने सुख-दुःख दोनों को दूर कर दिया।

329

कबीर मन मृतक भया, दुर्बल भया सरीर।
तब पैंडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर॥

जब मन मर गया और शरीर दुर्बल हो गया, तब हरि स्वयं पीछे-पीछे 'कबीर-कबीर' पुकारते फिरने लगे। अहं मिटते ही ईश्वर स्वयं खोजने आते हैं।

512

सदा कृपालु दुःख परिहरन, बैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखही, सिंह रहित तु होय॥

सदा कृपालु रहे, दूसरों के दुःख हरे, किसी से बैर न रखे, क्षमा और ज्ञान की बात कहे और हिंसा से रहित हो—ये संत के लक्षण हैं।

514

सावधान और शीलता, सदा प्रफुल्लित गात।
निर्विकार गम्भीर मत, धीरज दया बसात॥

सावधानी, शील, सदा प्रसन्न मुख, निर्विकार और गंभीर मत, धैर्य और दया—ये सब साधु में बसते हैं।

538

दया गरीबी बंदगी, समता शील सुभाव।
ये ते लक्षण साधु के, कहें कबीर सतभाव॥

दया, विनम्रता, भक्ति, समता, शील और सरल स्वभाव—कबीर सच्चे भाव से कहते हैं कि ये ही साधु के लक्षण हैं।

621

दया और धरम का ध्वजा, धीरजवान प्रमान।
संतोषी सुख दायका, सेवक परम सुजान॥

दया और धर्म की ध्वजा उठाए हुए, धैर्यवान, संतोषी और सुख देने वाला—ऐसा सेवक ही परम बुद्धिमान है।

795

देह खेह खोय जायगी, कौन कहेगा देह।
निश्चय कर उपकार ही, जीवन का फल येह॥

यह देह मिट्टी होकर खो जाएगी, फिर देने को कौन कहेगा? निश्चय करके परोपकार कर लो—यही जीवन का फल है।

मन और संयम

38 दोहे

28

आया था किस काम को, तू सोया चादर तान।
सुरत सम्भाल ए गाफिल, अपना आप पहचान॥

तू इस संसार में किस काम के लिए आया था, और चादर तानकर बेसुध सो रहा है! हे लापरवाह मनुष्य, अपनी सुध सँभाल और अपने असली स्वरूप को पहचान।

41

बाजीगर का बाँदरा, ऐसा जीव मन के साथ।
नाना नाच दिखाय कर, राखे अपने साथ॥

जीव मन के हाथों वैसे ही नचाया जाता है जैसे मदारी अपने बंदर को नचाता है। मन तरह-तरह के नाच दिखाकर जीव को अपने वश में बनाए रखता है। मन को साधना ही साधना है।

42

अटकी भाल शरीर में, तीर रहा है टूट।
चुम्बक बिना निकले नहीं, कोटि पटन को फूट॥

शरीर में तीर की नोक अटकी रह गई है और तीर टूट चुका है। यह चुम्बक के बिना नहीं निकलेगी, चाहे करोड़ों उपाय कर लो। इसी तरह मन में धँसा विकार गुरु-कृपा रूपी चुम्बक से ही निकलता है।

63

मैं अपराधी जन्म का, नख-सिख भरा विकार।
तुम दाता दुःख भंजना, मेरी करो सम्हार॥

मैं जन्म से ही अपराधी हूँ और नख से शिखा तक विकारों से भरा हूँ। तुम दाता हो और दुःखों को हरने वाले हो—मेरी सँभाल करो। यह विनम्र आत्म-स्वीकृति है।

73

आहार करे मन भावता, इंद्री किए स्वाद।
नाक तलक पूरन भरे, तो का कहिए प्रसाद॥

जो मनमाना भोजन करे, इंद्रियों के स्वाद के पीछे भागे और नाक तक ठूँसकर खाए—उसे प्रसाद कैसे कहा जाए? संयमित आहार ही प्रसाद है, भोग नहीं।

85

कबीरा धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय।
टूट एक के कारने, स्वान घरै घर जाय॥

धैर्य धारण करने के कारण हाथी को मन भर भोजन एक ही स्थान पर मिल जाता है। वहीं कुत्ता एक टुकड़े के लिए घर-घर भटकता फिरता है। धैर्य से गरिमा और तृप्ति दोनों मिलती हैं।

94

फल कारण सेवा करे, करे न मन से काम।
कहे कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम॥

जो फल की इच्छा से सेवा करे और मन लगाकर काम न करे, कबीर कहते हैं वह सेवक नहीं—वह तो चौगुना मूल्य चाहने वाला व्यापारी है। सेवा निष्काम होनी चाहिए।

98

तन बोहित मन काग है, लख योजन उड़ जाय।
कबहु के धरम अगम दयी, कबहुँ गगन समाय॥

शरीर जहाज है और मन उस पर बैठा कौआ, जो लाखों योजन दूर उड़ जाता है। कभी वह अगम्य ऊँचाइयों पर पहुँचता है, कभी आकाश में खो जाता है—पर लौटकर जहाज पर ही आता है।

108

कबीरा खालिक जागिया, और ना जागे कोय।
जाके विषय विष भरा, दास बंदगी होय॥

जिसमें ईश्वर का बोध जाग गया, वही सचमुच जागा है; बाकी सब सोए हुए हैं। जिसके भीतर विषयों का विष भरा है, वह बंदगी करता तो दिखता है पर जागा नहीं होता।

135

आशा का ईंधन करो, मनशा करो बभूत।
जोगी फेरी यों फिरो, तब वन आवे सूत॥

आशाओं को ईंधन बनाकर जला दो और मन की कामनाओं की भस्म रमा लो। योगी बनकर ऐसे फेरी लगाओ, तभी साधना का सूत्र हाथ आएगा।

155

कबीरा मनहि गयंद है, अंकुश दै-दै राखि।
विष की बेली परि रहै, अमृत को फल चाखि॥

मन मतवाले हाथी जैसा है, इसे अंकुश दे-देकर वश में रखो। नहीं तो यह विष की बेल पर ही पड़ा रहेगा; अंकुश में रहे तो अमृत फल चखेगा।

159

चंदन जैसा साधु है, सर्पहि सम संसार।
वाके अंग लपटा रहे, मन में नाहिं विकार॥

साधु चंदन के वृक्ष जैसा है और संसार साँप के समान। साँप चंदन से लिपटा रहता है, फिर भी चंदन के मन में कोई विकार नहीं आता—वह अपनी शीतलता नहीं छोड़ता।

169

तन को जोगी सब करे, मन को बिरला कोय।
सहजै सब विधि पाइये, जो मन जोगी होय॥

शरीर से योगी बनना सबको आता है, मन से योगी कोई विरला ही बनता है। यदि मन योगी हो जाए तो सब कुछ सहज ही प्राप्त हो जाता है।

203

कबीरा राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ॥

मुख से अमृत जैसे गुण गाकर राम को प्रसन्न कर लो। जैसे टूटे रत्न को जोड़ते समय संधि से संधि मिलाई जाती है, वैसे ही बिखरे मन को सावधानी से जोड़ना पड़ता है।

216

हाँसी खेलों हरि मिलै, कौण सहै षरसान।
काम क्रोध तृष्णा तजै, तोहि मिलै भगवान॥

यदि हँसी-खेल में ही हरि मिल जाते तो कठिन तप कौन सहता? काम, क्रोध और तृष्णा का त्याग करो, तभी भगवान मिलेंगे।

225

कामी अभी न भावई, विष ही कों ले सोधि।
कुबुद्धि न जीव की, भावै स्यंभ रहौ प्रमोथि॥

कामी व्यक्ति को अमृत नहीं भाता, वह विष को ही खोजकर ले लेता है। जीव की कुबुद्धि जाती नहीं, चाहे कितना ही समझाया-मथा जाए।

229

ज्ञानी मूल गवाइयाँ, आपण भये करना।
ता थैं संसारी भला, मन में रहै डरना॥

अहंकारी ज्ञानी ने अपनी मूल पूँजी ही गँवा दी, क्योंकि वह स्वयं को कर्ता मानने लगा। उससे तो वह सांसारिक व्यक्ति भला है जिसके मन में कम से कम डर तो बना रहता है।

230

कामी लज्जा ना करै, न माहें अहिलाद।
नींद न माँगै साथरा, भूख न माँगे स्वाद॥

कामी को लज्जा नहीं आती और न भीतर सच्चा आनंद रहता है। जैसे गहरी नींद बिछौना नहीं माँगती और सच्ची भूख स्वाद नहीं—वैसे ही तीव्र वासना विवेक नहीं देखती।

240

कबीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं भ्रम।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रम॥

मन इस भ्रम में फूला फिरता है कि 'मैं करता हूँ'। इसी अहंकार में वह करोड़ों कर्मों का बोझ सिर पर लादे चला जा रहा है और अपना भ्रम देख ही नहीं पाता।

256

पद गाएं मन हरषिया, साषी कह्यां अनंद।
सो तत नावं न जाणिया, गल में पड़िया फंद॥

पद गाकर मन प्रसन्न हुआ और साखी कहकर आनंद आया। पर उस मूल तत्त्व को नहीं जाना—इसीलिए गले में फंदा पड़ा ही रहा। रसिकता तत्त्वबोध नहीं है।

267

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछाणि॥

मन को मथुरा, दिल को द्वारिका और शरीर को काशी समझो। दसवाँ द्वार ही असली मंदिर है—उसी में उस ज्योति को पहचानो।

279

पाणी ही तै पातला, धुवाँ ही तै झीण।
पवनां बेगि उतावला, सो दोस्त कबीर कीन्ह॥

जो पानी से भी पतला है, धुएँ से भी सूक्ष्म और हवा से भी तेज—कबीर ने उसी को अपना मित्र बनाया है। परमात्मा इंद्रियों की पकड़ से परे है।

280

कबीर मारू मन कूँ, टूक-टूक है जाइ।
विष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ॥

मन को ऐसे मारूँ कि वह टुकड़े-टुकड़े हो जाए। विष की क्यारी बोकर काटते समय पछताने से क्या लाभ? बोने के समय ही सावधानी चाहिए।

282

मैं मंता मन मारि रे, घट ही माहें घेरि।
जबही चालै पीठि दे, अंकुस दै-दै फेरि॥

हे मतवाले मन, तुझे मारकर हृदय के भीतर ही घेर लूँ। जब भी तू मुँह मोड़कर भागे, अंकुश दे-देकर वापस मोड़ लूँ।

283

मनह मनोरथ छाँड़िये, तेरा किया न होइ।
पाणी में घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ॥

मन की व्यर्थ कामनाएँ छोड़ दो, तेरे चाहने से कुछ नहीं होता। यदि पानी से घी निकलने लगे तो रूखी रोटी कौन खाए? इच्छाएँ यथार्थ नहीं बदलतीं।

293

कैसो कहा बिगाड़िया, जो मुंडै सौ बार।
मन को काहे न मूंडिये, जामे विषम-विकार॥

बालों ने क्या बिगाड़ा है जो उन्हें सौ बार मुँड़ाते हो? मन को क्यों नहीं मूँड़ते, जिसमें भयंकर विकार भरे पड़े हैं?

303

काम मिलावे राम कूं, जे कोई जाणै राखि।
कबीर बिचारा क्या कहै, जाकि सुखदेव बोले साख॥

यदि कोई उसे सँभालना जाने तो कामना भी राम से मिला सकती है—तीव्र लगन दिशा बदल दे तो साधन बन जाती है। कबीर बेचारा क्या कहे, इसकी गवाही तो शुकदेव देते हैं।

319

कबीर संसा कोउ नहीं, हरि सूं लाग्गा हेत।
काम-क्रोध सूं झूझणा, चौडै माह्या खेत॥

अब कोई संशय नहीं रहा, हरि से प्रेम लग गया। अब तो काम और क्रोध से खुले मैदान में जूझना है—यह भीतर का युद्ध है।

320

कबीर सोई सूरिमा, मन सूँ माँडै झूझ।
पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करै सब दूज॥

सच्चा शूरवीर वही है जो अपने मन से युद्ध ठाने। जो पाँचों विकार रूपी प्यादों को गिरा दे और सारे द्वैत को दूर कर दे।

332

अबरन कों का बरनिये, मोपै लख्या न जाइ।
अपना बाना वाहिया, कहि-कहि थाके भाइ॥

जिसका कोई वर्ण-रूप ही नहीं, उसका वर्णन कैसे करें? वह इंद्रियों से जाना नहीं जाता। सब अपनी-अपनी बात कह-कहकर थक गए, पर कोई पार न पा सका।

518

इंद्रिय मन निग्रह करन, हिरदा कोमल होय।
सदा शुद्ध आचरण में, रह विचार में सोय॥

इंद्रियों और मन का निग्रह करे, हृदय कोमल रखे, सदा शुद्ध आचरण में रहे और विचारशील बना रहे।

696

मौत बिसारी बाहिरा, अचरज कीया कौन।
मन माटी में मिल गया, ज्यों आटा में लौन॥

मृत्यु को भुला देने से बड़ा आश्चर्य और क्या होगा? मन मिट्टी में ऐसे मिल गया जैसे आटे में नमक—पहचान ही खो गई।

717

मेरा संगी कोई नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीत न ऊपजै, जिय विस्वाय न होय॥

मेरा कोई साथी नहीं, सब स्वार्थी लोग हैं। इसीलिए मन में विश्वास नहीं उपजता और जी को भरोसा नहीं होता।

721

या मन गहि जो थिर रहै, गहरी धूनी गाड़ि।
चलती बिरयाँ उठि चला, हस्ती घोड़ा छाड़ि॥

इस मन को पकड़कर स्थिर हो जाओ और गहरी धूनी जमा लो। चलने का समय आते ही हाथी-घोड़े छोड़कर उठ चलना पड़ेगा।

722

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय।
कोई काहू का है नहीं, देखा ठोंकि बजाय॥

यह शरीर सराय है, मन पहरेदार और कामनाएँ यात्री बनकर उतर आई हैं। ठोक-बजाकर देख लिया—यहाँ कोई किसी का नहीं।

729

यह बिरियाँ तो फिर नहीं, मन में देख विचार।
आया लाभहि कारनै, जनम जुवा मति हार॥

यह अवसर फिर नहीं मिलेगा, मन में विचार कर देख। तू लाभ कमाने आया था—इस जन्म को जुए में मत हार।

732

विषय वासना उरझिकर, जनम गवाँय जाद।
अब पछितावा क्या करे, निज करनी कर याद॥

विषय-वासना में उलझकर जन्म गँवा दिया। अब पछताने से क्या लाभ—अपनी करनी याद कर।

801

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

जब मैं संसार में बुराई खोजने निकला तो कोई बुरा न मिला। पर जब अपने ही भीतर झाँककर देखा तो पाया कि मुझसे बुरा कोई नहीं। कबीर कहते हैं—दोष दूसरों में ढूँढ़ने से पहले अपने भीतर देखो।

संतोष और त्याग

19 दोहे

8

साईं इतना दीजिये, जा में कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

हे प्रभु! मुझे इतना ही दीजिए जिसमें मेरा परिवार भरण-पोषण पा सके—न मैं भूखा रहूँ और न मेरे द्वार से कोई साधु भूखा लौटे। यह संतोष और सादगी की प्रार्थना है, धन-संचय की नहीं।

23

आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जात जंजीर॥

जो इस संसार में आया है वह जाएगा ही—चाहे राजा हो, गरीब हो या फकीर। कोई सिंहासन पर सवार होकर विदा होता है, कोई जंजीरों में बँधकर; पर जाना सबको है।

107

साधु गाँठि न बाँधई, उदर समाता लेय।
आगे-पीछे हरि खड़े, जब भोगे तब देय॥

साधु कल के लिए गाँठ नहीं बाँधता, केवल पेट भर लेता है। आगे-पीछे स्वयं हरि खड़े हैं—जब आवश्यकता होगी तब वे स्वयं दे देंगे। संग्रह अविश्वास का चिह्न है।

120

जो तू चाहे मुक्ति को, छोड़े दे सब आस।
मुक्त ही जैसा हो रहे, बस कुछ तेरे पास॥

यदि तू मुक्ति चाहता है तो सारी आशाएँ छोड़ दे। जब तू मुक्त जैसा हो जाएगा, तब सब कुछ अपने आप तेरे पास होगा। इच्छाओं का त्याग ही मुक्ति का द्वार है।

261

खूब खाँड है खीचड़ी, माहि पड्याँ टुक लून।
देख पराई चूपड़ी, जी ललचावे कौन॥

थोड़ा-सा नमक पड़ी खिचड़ी भी शक्कर जैसी मीठी है। फिर पराई चुपड़ी रोटी देखकर मन क्यों ललचाए? अपने में संतोष हो तो दूसरे का वैभव नहीं खलता।

337

बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार।
दुहुँ चूका रीता पड़ै, वाकूँ वार न पार॥

वैरागी वही भला जो सचमुच विरक्त हो और गृहस्थ वही जिसका चित्त उदार हो। जो दोनों में चूक जाए, वह खाली रह जाता है और उसका कोई ठिकाना नहीं।

510

सदा रहे संतोष में, धरम आप दृढ़ धार।
आश एक गुरुदेव की, और चित्त विचार॥

सदा संतोष में रहे, धर्म को दृढ़ता से धारण करे और केवल गुरुदेव की ही आशा रखे—यही सच्चे साधक का चित्त है।

567 उदर समाता माँगि ले, ताको नाहिं दोष।
कहें कबीर अधिका गहै, ताकि गति न मोष॥

पेट भर के लिए माँग लेने में कोई दोष नहीं। कबीर कहते हैं—जो आवश्यकता से अधिक ग्रहण करता है, उसकी न गति होती है न मोक्ष।

568 अजहूँ तेरा सब मिटें, जो मानै गुरु सीख।
जब लग तू घर में रहै, मति कहुँ माँगे भीख॥

यदि गुरु की सीख मान लो तो अब भी सब कष्ट मिट सकते हैं। जब तक घर में हो, कहीं भीख मत माँगो।

569 माँगन गै सो भर रहै, भरे जु माँगन जाहिं।
तिन ते पहिले वे मरे, होत करत है नाहिं॥

जो माँगने गया वह भरा नहीं और जो भरे थे वे भी माँगने चले गए। ऐसे लोग जीते-जी ही मरे हुए हैं—उनसे कुछ बनता-होता नहीं।

570 माँगन-मरण समान है, तोहि दई मैं सीख।
कहें कबीर समझाय के, मति कोई माँगे भीख॥

माँगना मरने के समान है—यही सीख मैं तुम्हें देता हूँ। कबीर समझाकर कहते हैं, कोई भीख मत माँगे।

571 उदर समाता अन्न ले, तनहि समाता चीर।
अधिकहिं संग्रह ना करै, तिसका नाम फकीर॥

जो पेट भर अन्न ले और शरीर ढकने भर वस्त्र, और उससे अधिक संग्रह न करे—उसी का नाम फकीर है।

572 आब गया आदर गया, नैनन गया सनेह।
यह तीनों तब ही गये, जबहिं कहा कुछ देह॥

प्रतिष्ठा गई, आदर गया और आँखों का स्नेह भी गया—ये तीनों उसी क्षण चले गए जब मुँह से 'कुछ दो' कह दिया गया।

573 सहत मिलै सो दूध है, माँगि मिलै सा पानि।
कहें कबीर वह रक्त है, जामें एंचातानि॥

जो सहज मिल जाए वह दूध है, माँगकर मिले वह पानी। कबीर कहते हैं—जिसमें खींचतान करनी पड़े, वह तो रक्त के समान है।

574 अनमाँगा उत्तम कहा, मध्यम माँगि जो लेय।
कहें कबीर निकृष्टि सो, पर धर धरना देय॥

बिना माँगे मिले वह उत्तम, माँगकर लिया जाए वह मध्यम। कबीर कहते हैं—सबसे निकृष्ट वह है जो दूसरे के द्वार पर धरना देकर ले।

575

अनमाँगा तो अति भला, माँगि लिया नहिं दोष।
उदर समाता माँगि ले, निश्चय पावै योष॥

बिना माँगे मिलना अत्यंत उत्तम है, और पेट भर के लिए माँग लेने में भी दोष नहीं। उतने से ही संतोष निश्चित मिल जाता है।

792

खाय-पकाय लुटाय के, करि ले अपना काम।
चलती बिरिया रे नरा, संग न चले छदाम॥

खाओ, खिलाओ और बाँटकर अपना काम कर लो। हे मनुष्य, चलते समय एक कौड़ी भी साथ नहीं जाती।

793

खाय-पकाय लुटाय के, यह मनुवा मिजमान।
लेना होय सो लेई ले, यही गोय मैदान॥

खाओ, पकाओ और बाँटो—यह मन तो केवल मेहमान है। जो लेना है यहीं ले लो, यही मैदान है और यही अवसर।

794

गाँठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सी देह।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह॥

गाँठ में जो है उसे हाथ में लाओ और हाथ में जो है उसे दे दो। आगे न बाजार है न बनिया—जो लेना है यहीं ले लो।

उपदेश और चेतावनी

50 दोहे

12

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥

हे मन! धैर्य रख, सब कुछ अपने समय पर ही होता है। माली चाहे सौ घड़े पानी डाल दे, फल तभी लगेगा जब उसकी ऋतु आएगी। जल्दबाजी से नहीं, प्रतीक्षा और निरंतर प्रयास से फल मिलता है।

24

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होएगी, बहुरि करेगा कब॥

जो कल करना है उसे आज कर लो और जो आज करना है उसे अभी कर लो। पल भर में सब कुछ समाप्त हो सकता है, फिर करने का अवसर कब मिलेगा? यह अकर्मण्यता के विरुद्ध चेतावनी है।

57

जागन में सोवन करे, साधन में लौ लाय।
सूरत डोर लागी रहे, तार टूट नाहिं जाय॥

जो जागते हुए भी संसार से सोया-सा रहे और साधना में लगन लगाए रखे—उसकी सुरति की डोर प्रभु से ऐसी जुड़ी रहती है कि वह तार कभी टूटता नहीं।

76

दिल का मरहम ना मिला, जो मिला सो गरजी।
कह कबीर आसमान फटा, क्यों कर सीवे दरजी॥

दिल का घाव भरने वाला कोई नहीं मिला; जो मिला वह भी स्वार्थी निकला। कबीर कहते हैं—जब आसमान ही फट जाए तो दर्जी उसे कैसे सिएगा? कुछ पीड़ाएँ सांसारिक उपायों से परे हैं।

89

मार्ग चलते जो गिरा, ताकों नाहिं दोष।
यह कबीरा बैठा रहे, तो सिर करड़े दोष॥

जो चलते हुए गिर गया, उसका कोई दोष नहीं। पर कबीर कहते हैं—जो चला ही नहीं, बैठा ही रह गया, दोष उसके सिर पर है। प्रयास करके असफल होना निष्क्रियता से बेहतर है।

95

तेरा साईं तुझमें, ज्यों पहुपन में बास।
कस्तूरी का हिरन ज्यों, फिर-फिर ढूँढ़त घास॥

तेरा स्वामी तुझमें ही है, जैसे फूल में सुगंध बसती है। पर तू उसे बाहर खोजता फिरता है—ठीक वैसे ही जैसे कस्तूरी-मृग अपनी ही नाभि की गंध घास में ढूँढ़ता है।

100

कहता तो बहुत मिला, गहता मिला न कोय।
सो कहता वह जान दे, जो नहिं गहता होय॥

कहने वाले तो बहुत मिले, पर ग्रहण करने वाला कोई नहीं मिला। ऐसे कहने वाले को जाने दो जो स्वयं अपनी कही बात को ग्रहण नहीं करता। उपदेश देना सरल है, जीना कठिन।

102

आस पराई राखता, खाया घर का खेत।
औरन को उपदेशता, मुख में पड़ रेत॥

जो दूसरों से आशा लगाए बैठा रहा, उसका अपना खेत भी चौपट हो गया। और जो स्वयं करता कुछ नहीं, केवल दूसरों को उपदेश देता है—उसके मुँह में रेत ही पड़े। कथनी से पहले करनी चाहिए।

105

बलिहारी वा दूध की, जामें निकसे घीव।
घी साखी कबीर की, चार वेद का जीव॥

उस दूध पर बलिहारी जिससे घी निकले। कबीर की साखी उसी घी के समान सार है, जिसमें चारों वेदों का प्राण समाया हुआ है। सार वही है जो निथरकर निकले।

111

सब आए इस एक में, डाल-पात फल-फूल।
कबीरा पीछा क्या रहा, गह पकड़ी जब मूल॥

डाल, पत्ते, फल, फूल—सब उसी एक मूल से निकले हैं। कबीर कहते हैं, जब जड़ ही पकड़ ली तो पीछे क्या रह गया? मूल तत्त्व जान लेने पर शेष अपने आप समझ आ जाता है।

113

सिंह अकेला बन रहे, पलक-पलक कर दौर।
जैसा बन है आपना, तैसा बन है और॥

सिंह वन में अकेला ही रहता है और निर्भय होकर विचरता है। उसके लिए अपना वन हो या पराया, सब बराबर है। आत्मबल वाला व्यक्ति कहीं भी अकेला और निर्भय रह सकता है।

116

जो जाने जीव न आपना, करहीं जीव का सार।
जीवा ऐसा पाहौना, मिले ना दूजी बार॥

जो यह नहीं समझता कि यह जीव उसका अपना है, वह उसकी सुध कैसे लेगा? यह जीवन रूपी अतिथि ऐसा है जो दूसरी बार नहीं मिलेगा। इसकी सँभाल अभी कर लो।

130

साईं ते सब होते हैं, बंदे से कुछ नाहिं।
राई से पर्वत करे, पर्वत राई माहिं॥

सब कुछ प्रभु से होता है, बंदे के वश में कुछ नहीं। वे राई को पर्वत बना सकते हैं और पर्वत को राई। अहंकार करना व्यर्थ है।

138

उत ते कोई न आवई, पासू पूछूँ धाय।
इतने ही सब जात है, भार लदाय लदाय॥

उस लोक से कोई लौटकर नहीं आता कि दौड़कर उससे हाल पूछूँ। यहाँ से तो सब अपने कर्मों का भार लादे चले ही जा रहे हैं। यही जीवन का एकतरफा सत्य है।

145

काल करे सो आज कर, सबहि सात तुव साथ।
काल काल तू क्या करे, काल काल के हाथ॥

जो कल करना है वह आज कर ले, सब कुछ तेरे साथ है। 'कल-कल' करके क्या टालता है? कल तो स्वयं काल के हाथ में है, वह तेरे वश में नहीं।

146

कहा किया हम आय कर, कहा करेंगे पाय।
इनके भये न उतके, चाले मूल गवाय॥

यहाँ आकर हमने किया क्या और वहाँ पहुँचकर क्या करेंगे? न इस लोक के रहे न उस लोक के—मूल पूँजी ही गँवाकर चल दिए। दोनों ओर से हाथ खाली।

148

कबीरा लोहा एक है, गढ़ने में है फेर।
ताहि का बखतर बने, ताहि की शमशेर॥

लोहा तो एक ही है, अंतर गढ़ने में है। उसी से कवच बनता है जो रक्षा करता है और उसी से तलवार जो प्रहार करती है। संस्कार ही मनुष्य की दिशा तय करते हैं।

150

करता था सो क्यों किया, अब कर क्यों पछिताय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय॥

जो किया वह सोच-समझकर क्यों नहीं किया, अब पछताने से क्या लाभ? बबूल का पेड़ बोकर आम खाने की आशा कैसे की जा सकती है? कर्म वैसा ही फल देता है।

157

कबीरा आप ठगाइए, और न ठगिए कोय।
आप ठगे सुख होत है, और ठगे दुख होय॥

स्वयं ठगे जाना स्वीकार करो, पर किसी और को मत ठगो। स्वयं ठगे जाने में अंततः सुख है और दूसरे को ठगने में दुःख। छल का फल छलने वाले को ही भोगना पड़ता है।

164

ज्यों नैनन में पूतली, त्यों मालिक घर माँहि।
मूर्ख लोग न जानिए, बाहर ढूँढ़त जाहिं॥

जैसे आँखों के भीतर पुतली रहती है, वैसे ही मालिक इस देह-घर में ही बसता है। मूर्ख लोग यह नहीं जानते और उसे बाहर ढूँढ़ने निकल जाते हैं।

165

जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुष्प बास ते पामरा, ऐसा तत्त्व अनूप॥

उस परम तत्त्व का न मुख है न माथा, न वह सुंदर है न कुरूप। वह फूल की सुगंध से भी सूक्ष्म है—ऐसा अनुपम है वह तत्त्व, जिसे रूप में बाँधा नहीं जा सकता।

176

बूँद पड़ी जो समुद्र में, ताहि जाने सब कोय।
समुद्र समाना बूँद में, बूझै बिरला कोय॥

बूँद समुद्र में समा जाए—यह तो सब जानते हैं। पर समुद्र स्वयं बूँद में समा जाए, इस रहस्य को कोई विरला ही समझता है। जीव का ब्रह्म में और ब्रह्म का जीव में होना यही है।

184

या दुनियाँ में आ कर, छाँड़ि देय तू ऐंठ।
लेना हो सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ॥

इस दुनिया में आकर अपनी अकड़ छोड़ दे। जो लेना है ले ले, क्योंकि यह बाजार उठने ही वाला है। जीवन का मेला जल्दी समाप्त हो जाता है।

188

साहिब तेरी साहिबी, सब घट रही समाय।
ज्यों मेहँदी के पात में, लाली रखी न जाय॥

हे स्वामी! तुम्हारी प्रभुता हर हृदय में समाई हुई है। जैसे मेहँदी के हरे पत्ते में छिपी लाली छिपाए नहीं छिपती, वैसे ही तुम्हारी उपस्थिति हर कण में झलकती है।

191

हरिया जाने रूखड़ा, जो पानी का गेह।
सूखा काठ न जान ही, केतुउ बूड़ा मेह॥

हरा वृक्ष ही पानी का महत्त्व जानता है। सूखी लकड़ी को कितनी भी वर्षा में डुबो दो, वह कुछ नहीं जानती। जिसका हृदय जीवित है, वही उपदेश ग्रहण करता है।

213

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवे।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवे॥

सारा संसार सुखी है—खाता है और सो जाता है। दुखी तो यह दास कबीर है, जो जागता है और रोता है। जिसे सत्य का बोध है, वही बेचैन रहता है।

218

पहुँचेंगे तब कहैंगें, उमड़ैंगे उस ठाईं।
आजहूँ बेरा समंद में, बोलि बिगूपैं काईं॥

वहाँ पहुँचकर ही कुछ कहेंगे, उसी स्थान पर उमड़ेंगे। अभी तो नाव समुद्र के बीच में है—अभी से बड़बोलापन करके क्यों उलझें? सिद्धि से पहले घोषणा नहीं करनी चाहिए।

221

कबीर एक न जान्यां, तो बहु जान्यां क्या होइ।
एक तै सब होत है, सब तै एक न होइ॥

यदि उस एक को नहीं जाना तो बहुत कुछ जान लेने से क्या लाभ? उस एक से सब कुछ हो जाता है, पर सब कुछ जान लेने से वह एक नहीं मिलता।

224

कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुत जो भीत।
जिन दिल बांध्या एक सूँ, ते सुख सोवै निचींत॥

कलियुग आने पर लोगों ने आपस में बहुत दीवारें खड़ी कर लीं। पर जिन्होंने अपना दिल एक ही से बाँध लिया, वे निश्चिंत होकर सुख से सोते हैं।

228

परनारी राता फिरैं, चोरी बिढ़ता खाहिं।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाहिं॥

जो पराई स्त्री में आसक्त फिरते हैं और चोरी का खाते हैं, वे चार दिन फलते-फूलते दिखते हैं, पर अंत में जड़ सहित नष्ट हो जाते हैं।

237

कबीर इस संसार कौ, समझाऊँ कै बार।
पूँछ जो पकड़ै भेड़ की, उतर या चाहे पार॥

इस संसार को कितनी बार समझाऊँ! ये लोग भेड़ की पूँछ पकड़कर भवसागर पार उतरना चाहते हैं। कुपात्र का सहारा लेकर मुक्ति नहीं मिलती।

257

जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चाले चाल।
पार ब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल॥

जैसा मुख से निकले वैसी ही चाल भी हो—कथनी और करनी एक हों। तब परब्रह्म पास ही रहते हैं और पल भर में निहाल कर देते हैं।

262

साईं सेती चोरियाँ, चोरा सेती गुझ।
जाणेगा रे जीवएगा, मार पड़ैगी तुझ॥

स्वामी से छिपाव और चोरों से मेल-जोल! अरे, जीते-जी समझ ले—अंत में मार तुझे ही पड़ेगी। ईश्वर से कुछ छिपा नहीं रहता।

272

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तू बसै।
नहिंतर बेगि उठाइ, नित का गंजर को सहै॥

हे प्रभु, मुझे उससे मिला दो जिसके हृदय में तू बसता है। नहीं तो मुझे शीघ्र उठा ही लो—यह नित्य की छटपटाहट कौन सहे?

287

बिन रखवाले बाहिरा, चिड़िया खाया खेत।
आधा-परधा ऊबरै, चेति सकै तो चैति॥

रखवाला बाहर चला गया और चिड़ियों ने खेत चर लिया। अब आधा-अधूरा ही बचेगा—यदि चेत सको तो अभी चेत जाओ।

306

फाटै दीदै मैं फिरों, नजिर न आवै कोई।
जिहि घटि मेरा साइयाँ, सो क्यूँ छाना होई॥

मैं आँखें फाड़-फाड़कर देखता फिरता हूँ, पर कोई दिखाई नहीं देता। जिस हृदय में मेरा स्वामी बसा हो, वह भला छिपा कैसे रह सकता है?

313

कबीर दुबिधा दूरि करि, एक अंग है लागि।
यहु सीतल बहु तपति है, दोऊ कहिये आगि॥

दुविधा को दूर करके एक ही पक्ष से जुड़ जाओ। यह शीतल है और वह अत्यंत तप्त—पर दुविधा में रहते हुए दोनों ही आग के समान जलाते हैं।

315

रचनाहार कूं चीन्हि लै, खैबे कूं कहा रोइ।
दिल मंदि में पैसि करि, ताणि पछेवड़ा सोइ॥

उस रचयिता को पहचान ले, खाने-पीने के लिए क्या रोना? हृदय रूपी मंदिर में प्रवेश करके चादर तानकर निश्चिंत सो जा।

322

अब तौ जूझ्या ही बणै, मुडि चल्याँ घर दूर।
सिर साहिबा कौ सोंपता, सोंच न कीजै सूर॥

अब तो जूझना ही बनेगा, लौटकर जाएँ तो घर बहुत दूर है। हे वीर! सिर स्वामी को सौंपते समय सोच-विचार मत कर। समर्पण में हिचक नहीं चलती।

326

जेते तारे रैणि के, तेतै बैरी मुझ।
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौ तुझ॥

रात के जितने तारे हैं, उतने ही मेरे शत्रु हैं। धड़ सूली पर हो और सिर कँगूरे पर टँगा हो, तब भी मैं तुझे न भूलूँ। निष्ठा की चरम घोषणा।

333

जिसहि न कोई विसहि तू, जिस तू तिस सब कोई।
दरिगह तेरी साइयाँ, जा मरूम कोइ होइ॥

जिसका कोई नहीं, उसका तू है; और जिसका तू है, उसका सब कोई है। हे स्वामी, तेरा दरबार ऐसा है जहाँ हर कोई स्वीकार पाता है।

334

साईं मेरा वाणियाँ, सहित करै व्यौपार।
बिन डाँड़ी बिन पालड़ै, तौले सब संसार॥

मेरा स्वामी एक व्यापारी है जो न्यायपूर्वक व्यापार करता है। वह बिना तराजू और बिना पलड़े के ही सारे संसार को तौल लेता है।

335

झल बावै झल दाहिनै, झलहि माहि त्योहार।
आगै-पीछै झलमाई, राखै सिरजनहार॥

बाएँ ज्वाला है, दाएँ ज्वाला, आगे-पीछे भी ज्वाला ही है—और उसी के बीच उत्सव मनाना है। रक्षा करने वाला तो सृजनहार ही है।

343

जो ऊग्या सो आंथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ॥

जो उगा है वह अस्त होगा, जो खिला है वह मुरझाएगा। जो चुना गया है वह ढह जाएगा और जो आया है वह जाएगा। यही अटल नियम है।

344

सीतलता तब जाणियें, समिता रहै समाइ।
पष छाँड़ै निरपष रहै, सबद न देष्या जाइ॥

शीतलता तभी आई मानो जब समता भीतर समा जाए। पक्षपात छोड़कर निष्पक्ष हो जाए और शब्दों के आडंबर से परे हो जाए।

347

कबीर सिरजन हार बिन, मेरा हित न कोइ।
गुण औगुण बिहणै नहीं, स्वारथ बँधी लोइ॥

सृजनहार के बिना मेरा कोई हितैषी नहीं। लोग गुण-अवगुण नहीं देखते, सब स्वार्थ से बँधे हैं।

350

क्या मुख लै बिनती करों, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत ओगुन करों, कैसे भावों तोहि॥

किस मुँह से प्रार्थना करूँ, मुझे लज्जा आती है। तुम्हारे देखते हुए ही अवगुण करता हूँ, फिर तुम्हें कैसे भाऊँगा?

791

लेना है सो जल्द ले, कही सुनी मान।
कहीं सुनी जुग जुग चली, आवागमन बँधान॥

जो लेना है जल्दी ले लो, यह कही-सुनी बात मान लो। सुनी-सुनाई बातें युग-युग से चली आ रही हैं और आवागमन का बंधन बना ही रहा।

796

देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह।
बहुरि न देही पाइये, अकी देह सुदेह॥

देह धारण करने का लाभ यही है कि इससे कुछ दिया जाए। यह देह फिर नहीं मिलेगी—इसी देह को सार्थक कर लो।

800

कबीर यह तन जात है, सको तो राखु बहोर।
खाली हाथों वह गये, जिनके लाख करोर॥

यह शरीर जा रहा है, हो सके तो इसे सँभाल लो। जिनके पास लाखों-करोड़ों थे, वे भी खाली हाथ ही गए।